THE BOOK WAS DRENCHED

TEXT PROBLEM WITHIN THE BOOK ONLY

कश्मीर की कहानियाँ

कश्मीर की कहानियाँ

★

कृश्नचन्दर

इलाहाबाद पब्लिशिंग हाउस
इलाहाबाद

सूची

दो शब्द

मैंने कश्मीर के सम्बन्ध में बहुत सी कहानियाँ लिखी हैं। उसके हुस्न के सम्बन्ध में, उसकी बदसूरती के सम्बन्ध में, उसके जागीर दाराना माहौल और उसकी लूट खसोट के सम्बन्ध में। ये कहानियाँ मैं बराबर लिखता आया हूँ और आज भी, जब कश्मीर एक अजीब दर्दनाक सूरत हालात से दो चार है, मैं कश्मीर से सैकड़ों मील दूर रहकर भी उसके सम्बन्ध में लिखने पर मजबूर हो गया हूँ। अगली पिछली कहानियों पर नज़र डालते हुए मैंने यह महसूस किया कि एक ऐसे संग्रह का सख़्त ज़रूरत है जिसमें कश्मीर सम्बन्धी उन तमाम कहानियों को जमा करूँ जो कश्मीर के समाजी जीवन के विभिन्न पहलुओं की चित्रकारी करते हुए आज की परिस्थितियों के प्रगतिशील पहलुओं को उजागर करने में सहायक हो सकें। यह संग्रह उसी ज़रूरत का नतीजा है। इस संग्रह में मैंने कश्मीर सम्बंधी कहानियों को इसी ढंग पर रक्खा है।

सबसे पहले जो कहानी मैंने लिखी वह कश्मीर के जीवन के सम्बंध में थी। दूसरी और तीसरी कहानी भी कश्मीर के सम्बंध में है। ये कहानियाँ लोगों ने बहुत पसन्द कीं और इसी पसन्दीदगी ने मेरी हिम्मत बढ़ाई कि मैं आगे चलकर कश्मीर के विषय पर बहुत कुछ लिख सकूँ। कुछ लोगों का ख़याल है कि मेरी कहानियाँ इसलिये इतनी अधिक पसन्द की गईं कि कश्मीर के सौन्दर्य का वर्णन इन कहानियों में बड़ी

सफलता के साथ हुआ है। इसमें सन्देह नहीं कि मैं कश्मीरी स्वभाव और कश्मीरी जनता के हुस्न से बेहद प्रभावित हुआ हूँ और मैंने शुरू की कहानियों में इस बात की पूरी कोशिश की कि यह हुस्न और उसकी सारी रूह खिंचकर मेरी कहानियों में समा जाय, लेकिन इसके साथ-साथ मुझे इन नयनाभिराम दृश्यों के अन्दर वह बदसूरती और ज़ालिमाना दुख-दर्द भी मिले जिसको यदि मैं जगह-जगह अपनी कहानियों में प्रकट न करता तो शायद इन कहानियों में वह ज़िन्दगी और गति न मलती जिसने जनता को इतना प्रभावित किया। कला के हुस्न का रहस्य सौन्दर्य के वर्णन में नहीं है, सौन्दर्य और बदसूरती की तुलना में है, उस कशमकश में है जो एक खूबसूरत और हसीन माहौल और जागीरदाराना व्यवस्था की पैदा की हुई गन्दगी से सम्बंध रखती है।

मेरे बचपन की हसीन तरीन यादें, जवानी के बहूमूल्य क्षण कश्मीर से सम्बंधित हैं। मैं कश्मीर में कहुत घूमा हूँ, महीनों किसानों के घरों में रहा हूँ, उनके साथ रहकर मैंने आम इन्सानों की खुशियाँ और उनके दुख देखे हैं, उनकी ग़रीबी और जेहालत को चखा है और उनके अंध-विश्वास का बोझ उठाया है, उनकी उदारता और पड़ोसियों के प्रति उनके प्रेम को महसूस किया है, प्रकृति से उन्हें जो शायराना प्यार है उसके मधुरतम स्पर्श ने मेरी आत्मा को छुआ है और यहाँ मुझे इस बात को भी स्वीकार करना है कि यदि मैं यह सब कुछ इतने क़रीब से न देखता तो शायद मैं बहुत अरसे तक इन्सान की बुलन्दी और उसकी महानता से अपरिचित रहता। शायद मैं कभी कहानियाँ न लिखता. शायद मेरे मन में अपने देश और उसके लोगों के लिये प्रेम और वफ़ा का वह भाव

कभी जागृत न होता जिसके बिना इन्सान इन्सान नहीं बन सकता। यह बिलकुल सही है कि मेरी कला जनता की देन है, मेरी अनुभूति का स्रोत यही मेहनत कश जनता है जिसने मुझे सामाजिक अनुभूति के क ख ग से आगाह किया। जनता को छोड़कर कोई कला नहीं है, कोई कहानी नहीं है। जीवन में सुन्दरता और सत्य, ईमानदारी और पाकीजगी और बड़ाई जनता से आती है। इस मामले में मैं जनता को अपना गुरु समझता हूँ और उन्हीं के आगे आदर और श्रद्धा से अपना सर झुकाता हूँ।

जब मैंने आँखें खोलीं तो कश्मीर पर जागीरदारी का राक्षस अपने खूनी पंजे गाड़ पूर्णरूप से छाया हुआ था। मैंने अपनी इन आँखों से डोगरा-राज के अत्याचारों को देखा है। किस तरह हल चलाते हुए किसान अपने खेतों से घसीट कर बेगार पर भेज दिये जाते थे। किसान घर से अपने खेतों में हल चलाने के लिये आया है और दूसरे ही क्षण वह वहाँ से ग़ायब है और दस दिन तक उसके घर वालों को यह पता नहीं चलता कि वह कहाँ है, किधर गया है, जीवित है या मर गया है। खेतों में चलते-चलते अचानक रुक जाने वाले बैल किसान की किसी मंजिल का सुराग़ नहीं देते थे।

मैंने ऐसे जागीरदार भी देखे हैं जो कश्मीरी किसानों के गाँव में पहुँचते, सारे गाँव के तमाम मर्द औरतों और बच्चों तक को बँधवाकर कर अपने सामने मैदान में उनकी पिटाई कराते। इसके बाद रात-रात भर मर्दों को पेड़ों से बाँधे रखते और सुन्दर स्त्रियों को बिना धर्म या जाति भेद अपनी और अपनी दोस्तों और अहलकारों की हविस का निशाना बनाते। इसमें हिन्दू, मुसलमान सिक्ख सभी स्त्रियाँ शामिल होतीं। हाँ,

मुसलमान स्त्रियाँ अधिक संख्या में होतीं क्योंकि कश्मीर में मुस्लिम जनता पंचानबे फ़ीसदी है। सिर्फ़ डोगरा घरों को छोड़ दिया जाता, क्योंकि डोगरे आमतौर पर जागीरदार होते थे। लेकिन जम्मू और उधमपुर के इलाक़े में जो डोगरे जागीरदार नहीं थे बल्कि मामूली किसान थे वे कश्मीर के राजा की जाति होते हुए भी उसी तरह ग़रीब थे और उनकी स्त्रियों की लाज के साथ वही सलूक किया जाता था जो जागीरदारी दौर में दूसरों के साथ किया जाता था। चाहे वह हैदराबाद की मुस्लिम जागीर दारी हो या कश्मीर की हिन्दू जागीरदारी। उनकी अकड़, नशा, व्यवहार, सामाजिक मेल जोल, ज़ुल्म करने का दस्तूर बिलकुल एक सा है। ये धर्म को स्त्रियों की लाज लूटने के लिये इस्तेमाल करते हैं, आत्मा को शुद्ध करने के लिये नहीं। मुझे आश्चर्य उन साहित्यकों पर होता है जो आज भी इस परिस्थिति को जायज़ समझते हैं और उसकी हिमायत करते हुए ज़रा नहीं शर्माते।

कश्मीरी जनता अंग्रेज़ी सरकार से ख़रीदी गई थी इसलिये डोगराशाही जागीरादराना शासन-व्यवस्था में इन ज़रख़रीद ग़ुलामों की अपनी कोई ज़िन्दगी नहीं थी, उनकी स्त्रियों, बच्चों, बहू बेटियों की अपनी कोई इज़्ज़त नहीं थी, उनके खेत अपने नहीं थे, उनकी अपनी मेहनत अपनी मेहनत नहीं थी। यह व्यवस्था अत्याचार और हिन्सा पर क़ायम थी। इस व्यवस्था को क़ायम रखने वाले डोगरे अहलकार थे, डोगरा फ़ौज थी, और पंजाबी हिन्दू और पंजाबी मुसलमान अहलकार थे और हिन्दू बनिये और मुसलमान ख़ोजे थे और ये बनिये और लाले और ख़ोजे डोगरे और पंजाबी अहलकारों से मिलकर ग़रीब जनता को लूटते थे और जब कभी जनता

विद्रोह करती तो डोगरा फ़ौज उनके सर कुचलने को सदा तैयार रहती। यों तो हर साल जब अहलकार लोग दौरा करते, यह ज़ुल्म और अत्याचार होता रहता। पके हुए फल, पकी हुई औरतें, पकी हुई फ़सलें, हर चीज़ पर जागीरदारी का लगान था, मालिया, महसूल, चुंगी, नज़राना और सूद था और यह सूद दर सूद बढ़ता चला जा रहा था; इस पर भी मेहनत करने वाला किसान ज़िन्दा था। वह मेहनत करता था और लुटता था, फिर भी ज़िन्दा था और लड़ाई करता था। मार खाता था और मार सहता था फिर भी लड़ता था। सहम-सहम कर लड़ता था पर दाँव लगने पर कोई वार ख़ाली नहीं जाने देता था। यह लड़ाई अक्सर व्यक्तिगत और असंगठित रूप में होती पर होती ज़रूर थी। वह लड़ता था और गीत भी गाता था और जहाँ तक हो सके अपनी स्त्रियों, बच्चों, बहू बेटियों की रक्षा भी करता था। अक्सर नाकाम रहता, कभी-कभी कामयाब भी हो जाता। मेरी शुरू की कहानियों में आप को इन व्यक्तिगत लड़ाइयों का सुराग़ मिलेगा, उसकी महरूमियों और नाकामियों की चर्चा भी बहुत होगी और झुंझलाहट और निराशा और कुचली हुई ज़िन्दगी पर दया और तरस का भाव भी विशेष रूप में मिलेगा।

इसके बाद वह दौर आया जब धीरे-धीरे कश्मीरी जनता संगठित होने लगी और अपने मौजूदा नेताओं को मोहरा बनाकर आगे चली। उस ज़माने में उन्होंने बड़ी बे-जिगरी से अपनी आज़ादी की लड़ाई लड़ी और कई मोर्चे फ़तेह कर लिये। शुरू-शुरू में उन्हें ज़ुल्म और अत्याचार के कड़े वार सहने पड़े, कई बार ये आन्दोलन बड़ी सख़्ती से दबा दिये गये या साम्प्रदायिक आग में झुलसा दिये गये। लेकिन वास्तव में यह आन्दोलन साम्प्रदायिक आंदोलन न था। कुचली हुई

जनता के आर्थिक, सांस्कृतिक और राजनैतिक जीवन को बेहतर बनाने और उसे सँवारने का आन्दोलन था इसलिये साम्प्रदायिकता की आग भी उसे जला न सकी और कश्मीरी जनता यों एक मुट्ठी की तरह संगठित हो गई कि जागीरदार व्यवस्था हमला करने की जगह रक्षात्मक कारवाई के लिये मजबूर हो गई।

इस दौर में कश्मीरी जनता ने क़रीब-क़रीब बेगार का ख़ात्मा कर दिया, जागीरदारी के बहुत से महसूलों से ख़लासी पाली, अलग-अलग इलाक़ों के लोग एक दूसरे से क़रीब होते गये, कश्मीरी राष्ट्रीयता की भावना ज़ोर पकड़ती गई, ज़ालिम अहलकारों को ख़त्म किया गया और शिक्षा के लिये सुविधायें प्राप्त की गईं। यह कश्मीरी किसानों के आगे बढ़ने का ज़माना है। मैंने इस दौर में कश्मीरी किसानों के चेहरों पर विजय की लाली देखी है, उन्हें ज़िन्दगी में पहली बार अपने लूट-खसोट करने वालों के सामने गर्व से सर उठाकर चलते हुए देखा है, पहले किसान अहलकारों को सलाम करते थे और उनकी ख़ुशामद करते थे, अब स्थानीय अहलकार किसानों से डरते थे और उनकी चापलूसी करते थे और जागीरदारों ने अपने छोटे-छोटे पहाड़ी क़िलों में पनाह लेली थी और अब वे प्रजा को पिंडारों की तरह नहीं लूट सकते थे बल्कि अपने घरों के अन्दर दबके बैठे उचित अवसर की खोज में थे। वे जनता को क़ैद करते थे, अब जनता ने उनको क़ैद कर दिया था। जागीरदारी व्यवस्था का अन्त नहीं हुआ था लेकिन यह व्यवस्था अपने ऊपर जनता की लोहे की बेड़ियों की चमक ज़रूर महसूस करने लगी थी।

इसके बाद तीसरा दौर आता है। जब कश्मीरी जनता पुरानी सरकार की बिसात को उलटने ही को थी और प्रजातन्त्र

राज स्थापित्त करने जा रही थी कि हिन्दुस्तान विभाजित होगया और चन्द जागीरदारों और पूँजीपतियों ने अंग्रेज़ साम्राजियों से उनकी छत्रछाया में, उनकी सहायता से, उनके हथियारों से, उनकी पुश्त पनाही में देश को दो भागों में बाँट लिया। एक क़ौमियत (राष्ट्रीयता) के आधार पर नहीं क्योंकि दोनों देशों में एक से अधिक क़ौमें रहती हैं, एक भाषा के आधर पर नहीं, क्योंकि दोनों देशों में एक से अधिक भाषायें बोली जाती हैं, एक धर्म की बुनियाद पर नहीं क्योंकि दोनों देशों में विभिन्न धर्मों के मानने वाले रहते हैं, एक शासन व्यवस्था के विरुद्ध नहीं, यह नहीं कि यहाँ शुद्ध हिन्दू राज्य है और वहाँ ख़ालिस इस्लामी हुकूमत, यह बँटवारा ख़ालिस साम्राजी सिद्धान्तों पर किया गया, यानी यह तिजारती मंडी मेरी है और वह तिजारती मंडी तुम्हारी, इस कच्चे माल पर मेरा अधिकार है उस पर तुम्हारा, इधर भी पूँजीपति और जागीरदार थे, उधर भी पूँजीपति और जागीर-दार। जनता भेड़ों की तरह बाँटी गई और इस महान धोखे का नाम हिन्दुस्तान और पाकिस्तान की आज़ादी रखा गया और जनता की बढ़ती हुई जमहूरी तहरीक जो R. I. N. के विद्रोह से शुरू हुई थी खड्ड में डाल दिया गया और हिन्दुस्तान और पाकिस्तान में बँटवारे से पहले और बँटवारे के बाद घरेलू झगड़ों को बढ़ावा दिया गया जिसमें कि भोली जनता भूल जाय कि उनका असिल दुश्मन कौन है।

आज कश्मीर भी उसी घरेलू युद्ध में फँसा है। जम्मू के ग़रीब डोगरे और मुसलमान, कश्मीर की घाटी के ग़रीब किसान और पूँछ, हंडर बाग़ और पलंदरी के स्वाभिमानी फ़ौजी और किसान इस गृह-युद्ध में झोंक दिये गये हैं। एक तरफ़ पाकिस्तान की फ़ौजें हैं दूसरी तरफ़ हिन्दुस्तान की फ़ौजें हैं और उनके ऊपर

ऐंगलो-अमरीकी साम्राज्य के रक्षक हैं जो कश्मीर की क़िस्मत का फ़ैसला करने आये हैं। जिस तरह उन्होंने पच्छिमी कोरिया और यूनान की किस्मत का फ़ैसला किया है उसी तरह का फ़ैसला आज वह कश्मीर में कर रहे हैं। क्योंकि कश्मीर की बद-क़िस्मती यह है कि जिस तरह यूनान की सरहद साम्यवादी योरप से मिलती है उसी तरह कश्मीर की सरहद साम्यवादी रूस से मिलती है। इसीलिये बिल्लियों को लड़वा दिया गया है और साम्राज्य बन्दर की तरह तराज़ू पकड़े बैठा है और रोटी ख़ुद हड़प कर जाना चाहता है।

लेकिन कश्मीर रोटी नहीं है। वह तो जीते जागते इन्सानों की सरज़मीन है। वह लोग, जो महसूस करते हैं, जो खाते पीते हैं, प्रेम करते हैं, अपने मुल्क से मुहब्बत करते हैं। उन लोगों को अपनी तक़दीर ख़ुद बनाने का हक़ है। अगर सोयट्-ज़र्लैण्ड ऐसा छोटा सा देश योरप में स्वतंत्र रह सकता है तो कश्मीर हिन्दुस्तान, पाकिस्तान, चीन और रूस के बीच रहकर क्यों आज़ाद नहीं रह सकता, क्यों हिन्दुस्तान और पाकिस्तान के अधिकारीवर्ग इस देश को अपने प्रभाव-क्षेत्र में घसीटने के लिये तुले हुए हैं, क्यों हिन्दुस्तान और पाकिस्तान की फ़ौजें वहाँ पर हैं, क्यों लद्दाख़ और गिलगिट में विरोधी हवाई अड्डे बनाये जा रहे हैं, क्यों अमरीकी फ़ौजी अफ़सर कश्मीर की घाटियों के फ़ोटो ले रहे हैं, क्यों आज कश्मीर के सीने के अन्दर भी वही ख़ून की सुर्ख़ लकीर खींची जा रही है जिसने एक बार पहले भी हिन्दुस्तान और पाकिस्तान के बीच ख़ून के दरिया बहाये हैं। आज क्यों बारा-मूला और तराखल की घाटियों के लोग, दोनों किसान के बेटे होकर एक दूसरे के ख़ून के प्यासे हो रहे हैं। क्या वे यह समझते हैं कि कश्मीर की

क़िस्मत विदेशी फ़ौजों की संगीनों से सँवरेगी। उसे तो कश्मीर के किसान का हल और उसकी हँसिया ही जगायेगी। आज पेशावर के बाज़ारों में और अमृतसर की गलियों में कश्मीर की कुमारियाँ तीस-तीस रुपये में बिकी हैं। उन में इन कहानियों की आँगी भी होगी और ज़ेनी भी, और बेगमा भी और मरजानी भी और जमुना और राधा और खेतरी भी। आज विदेशी हमलावरों ने मेरी कहानियों का लोहू पिया है, उन्हें कोड़े लगाये हैं, उनकी लाज लूटी है। मैं कैसे समझ लूँ कि कश्मीर के मामले में उनकी नियत नेक है ?

दरअसल सवाल नियत का नहीं, सवाल अमल का है और जनता के हाथों में इन्क़लाबी शक्तियों की बागडोर थमा देने का है। इस वक़्त कश्मीर का फ़ैसला कश्मीर क जनता के हाथ में नहीं लेकिन आख़िर कार यह फ़ैसला जनता को करना है। जब तक कश्मीर की जनता ख़ुद एक होकर आगे नहीं बढ़ेगी और इन्क़लाबी ताक़त अपने हाथों में लेकर यह नहीं कहेगी कि हम अपने देश के स्वयं रक्षक हैं, हमें किसी की फ़ौजी मदद की ज़रूरत नहीं है, हर एक की दोस्ती की ज़रूरत है, हमें अमरीकी और बरतानी रक्षकों की ज़रूरत नहीं है, हमें लद्दाख़ और गिलगिट में फ़ौजी अड्डे नहीं चाहियें। पूँछ, रादलाकोट और पलन्दरी का किसान भी उतना ही ग़रीब, मजबूर और लाचार है और इसलिये उसकी आवश्तकतायें भी वही हैं जो जम्मू के ग़रीब डोगरे और अनन्त नाग के देहाती मुसलमान की। इस लिये कृपा कर आप सब लोग यहाँ से तशरीफ़ ले जाइये हमें आप की कोई ज़रूरत नहीं, हम ख़ुद अपने घर का इन्तज़ाम करेंगे।

इसके लिये कश्मीरी जनता को एक होना होगा, ख़ुद लड़ना

होगा और इस लड़ाई में अपना सम्बन्ध हिन्दुस्तान पाकिस्तान और दूसरे देशों की प्रगतिशील पार्टियों से जोड़ना होगा, क्यों कि आज कश्मीर की लाड़ाई दुनिया की सारी तरक्क़ीपसन्द ताक़तों की लाड़ाई है। यह वही खेल है जो यूनान वीटनाम, इन्डोनेशिया, मलाया और बर्मा में खेला जा रहा है। मोहरे और चालें स्थानीय परिस्थितियों के अनुसार कहीं-कहीं बदली नज़र आती हैं पर दाँव वही एक है—साम्राजी लूट !

—कृश्न चन्दर

आँगी

मुसाफ़िर ने आसमान की तरफ़ निगाह उठाई। आसमान के गहरे नीले समुद्र में बादलों के सफ़ेद-सफ़ेद टुकड़े बर्फ़ की बड़ी-बड़ी चट्टानों की तरह तैर रहे थे अ ।के पास ही चीलें मंडरा रही थीं। "चीलें ?" उसने हाँप कर अपने माथे से पसीना पोंछा। 'अब कोई गांव क़रीब ही होगा। चीलें इन्सानी आबादी का निशान हैं।' उसने दिल में सोचा—गिद्ध, कौवे, चीलें, इन्सान, इन जानवरों के गुण एक दूसरे से बहुत मिलते-जुलते हैं।' इसी तरह सोचता हुआ प्राणी-जगत की विशेषताओं के सम्बन्ध में विभिन्न दृष्टिकोण क़ायम करता हुआ, वह बहुत सा रास्ता तय कर गया। कई जगह तिर्छी ढलानें थीं, कई जगह ऊँची घाटियाँ थीं जिनके दामन में खड़े हुए ऐसा मालूम होता था कि उनकी चोटियों पर बादलों के महल बने हैं। पर

जब वह घाटी की चोटी पर पहुँचता तो बादलों का महल एका-एक ऊपर उठकर आकाश में टङ्ग जाता। इस दुनिया में कितना धोखा है। मुसाफ़िर की कल्पना ने अब दूसरी पगडंडी अपनाई। महात्मा बुद्ध ने ठीक कहा था, प्रकृति एक मृग-तृष्णा है। उसने फिर निगाह उठाकर दूर आकाश में तैरते हुए बादलों को देखा। सफ़ेद-सफ़ेद चमकते हुए लाखों ताजमहल थे और चारों ओर जमुना का नीला पानी फैला हुआ था। उसने सोचा—इन संगमरमरी महलों को किस शाहजहाँ ने बनाया है? और किस प्रेमिका की याद में?

मुसाफ़िर इसी तरह अपने दिल से बातें करता हुआ बहुत दूर निकल गया। अब हवा में नमी सी आ गई थी और सूरज पश्चिम की ओर जा रहा था। सामने पहाड़ों पर सनोवर के ख़ामोश जंगल खड़े थे जिनका गहरा सब्ज़ रंग डूबते हुए सूरज की किरणों में हलका लाल सा हो रहा था। यह रंग आख़िर है क्या? नीला, पीला, सब्ज़, सुर्ख़ और फिर एक ही इन्द्र-धनुष में सातों रंग या ओस की एक ही बूँद में पूरा इन्द्रधनुष। अजीब बात है, यह कैसी दुनिया है, मैं कहाँ जा रहा हूँ और वह गाँव अभी तक क्यों नहीं आया?

वह कन्धे पर पड़े हुए झोले को दुरुस्त करके अपनी छड़ी को ज़मीन पर पटक कर रास्ते में खड़ा हो गया और सरसरी निगाहों से चारों तरफ़ देखने लगा। ख़ामोशी, गहरी ख़ामोशी, और फिर एकाएक घन्टियों की शोर करती आवाज़ें। उसे मालूम हुआ कि लाखों मन्दिरों और गिरजों के घन्टे एकदम झनझना उठे हैं, मुसाफ़िर का स्वागत करने के लिए। उनकी आवाज़ ने घाटी के ख़ामोश तिलिस्म को तोड़ दिया। यह आवाज़ बढ़कर फ़िज़ा में फैल गई, ऊपर उठे हुए बादलों से टकराती

हुई मालूम हुई और फिर घूम-घूम कर पश्चिम की ओर से आती हुई मालूम हुई। पश्चिमी मोड़ से भेड़ों, बकरियों, गायों, भैंसों, भेढ़ों का एक रेवड़ निकल रहा था। मुसाफ़िर रास्ता छोड़ कर एक तरफ़ ऊँचे टीले पर खड़ा हो गया।

"हा हुश, बल्ली हाहा हुश हा हा...नीलती...हा हा बल्ली ही।"

नीलती और बल्ली दो सुन्दर बछड़ियाँ वापस घर जाने की ख़ुशी में हिरन की तरह चौकड़ियाँ भर रही थीं और बेचारी को उन्हें रेवड़ के साथ रखने में बड़ी कठिनाई महसूस हो रही थी। नीलता कभी भेड़ों के गल्ले में घुस जाती और उन्हें इतना परेशान करती कि वे 'बेबा' 'बाबे' करती हुई तितर-बितर हो जातीं और सारे रेवड़ की व्यवस्था को, जो किसी शिक्षित सेना की नियमितता के साथ चल रहा था, तोड़ देतीं। बल्ली नाचती कूदती हुई बकरियों के क़रीब जाती और उन्हें धक्के मार-मार कर पास के टीलों पर चढ़ा देती। बड़ी-बूढ़ी गायें और भैंसें निहायत इतमीनान से और कुछ हिक़ारत से यह नाज़रा देखती जाती थीं मानो कह रही थीं 'करले दो दिन और ऐश, फिर वह दिन भी आयेगा जब तेरी पिछली टाँगों को बाँध २ कर तेरा दूध दुहा जायगा, उस वक्त उछलना। फिर तेरी चाल भी हमारी तरह बेढंगी होकर रह जायगी। अब जी भर के मस्त हिरनी की तरह कुलाँचें भर ले।"

नीलती उछलती हुई मुसाफ़िर के क़रीब आ गई। उसके गले में बँधी हुई घन्टियों की सुरीली आवाज़ उसके नाचते हुए क़दमों के लिये घुँघरुओं का काम दे रही थी। फिर अपने अगले पाँव टीले पर टेक कर वह मुसाफ़िर के पाँव सुँघने लगी जैसे जंगल में घास के किसी गुच्छे को सूँघ रही हो। "नीलती हा।" चरवाही

ने अपने महीन स्वर में चिल्ला कर कहा। उसकी आवाज़ भी एक घन्टी से मिलती जुलती थी। पर सुन्दर नीलती ने कोई परवाह न की। शायद शोख़ी से या शरारत से। बेचारी चरवाही को तंग करने के लिये वह मुसाफ़िर के बूट चाटने लगी।

"नीलती हा हा हुश, नीलती ही!" वह फिर चिल्लाई।

चरवाही मुसाफ़िर के बिलकुल क़रीब आ गई और सोंटे से नीलती को सज़ा देने लगी। बेचारी तंग आ गई थी। चेहरे पर पसीने की बूँदें थीं और गाल भी ग़ुस्से से तमतमाये हुए थे। नीलती को परे हटाकर उसने निडर निगाहों से मुसाफ़िर की तरफ़ ताका—"राही को-को ?" (राही, किधर जा रहे हो ?) उसने पहाड़ी बोली में मुसाफ़िर से पूछा।

मुसाफ़िर मुस्करा दिया। फिर कहने लगा —"यह नीलती कितनी शरीर है ?"

चरवाही के चेहरे से तुर्शी जाती रही। वह नीलती की तरफ़, जो अभागी मार खाकर भी नाचती, भागती हुई जा रही थी, प्यार की निगाहों से देखकर बोली—"हां, अभी तीन साल भी इसकी उम्र नहीं।"

"हुम...और तुम्हारी उम्र कितनी है ?"

चरवाही ने एक क्षण के लिये मुसाफ़िर की तरफ़ हैरान निगाहों से देखा। दूसरे ही क्षण उसका चेहरा शर्म से लाल हो गया। उसने मुँह फेर लिया और रेवड़ के साथ-साथ चलने लगी। वह गायों की पीठ पर हलके-हलके सोंटे मार रही थी।

मुसाफ़िर टीले से उतर कर चरवाही के साथ हो लिया और उसका सोंटा छीन कर कहने लगा—"मालूम होता है आज

तुम्हारा बड़ा भाई तुम्हारे साथ नहीं आया। तभी तो रेवड़ चराने में तुम्हें इतनी तकलीफ़ हुई है। अब देखो, मैं रेवड़ संभालता हूँ और तुम एक भली नन्ही लड़की की तरह मेरे पीछे चली आओ। मैं थका हुआ हूँ, मुझे बहुत दूर जाना है। सूरज डूबने को है। कितनी दूर है तुम्हारा गाँव? यह हम वापस किधर जा रहे हैं?"

चरवाही ने हँसते हुए कहा—"गांव तो तुम पीछे छोड़ आये थे, इसीलिये वापस जा रहे हो। वह देखो न, उस घाटी के पास (उंगली उठा कर) वह रहा हमारा गाँव।"

"क्या नाम है।"

चरवाही ने जल्दी से जवाब दिया—"सारो।"

मुसाफ़िर ने चरवाही की तरफ़ देखकर कहा—"मैं कहने को था कि तुम्हारा क्या नाम है?"

"मेरा? मेरा नाम आँगी है।" आँगी ने रुकते-रुकते जवाब दिया—"तुम कहां से आ रहे हो?"

मुसाफ़िर ने जैसे कुछ सुना ही नहीं। ज़ोर-ज़ोर से रेवड़ को आवाज़ें देने में लग गया—"हुश, हा हा, नीलती हा, आँगी हा, बिल्ली आहा।"

आँगी हँसते-हँसते लोट पोट होगई। "अच्छा तो जैसे मैं भी एक बछिया हूँ। हो हो हो ...मैं हँसते-हँसते मर जाऊँगी। यह राही कितना अजीब है...हा हा...तुम तो रेवड़ को भी क़ाबू में नहीं रख सकते, इधर लाओ सोंटा।"

और चरवाही ने हँसते-हँसते मुसाफ़िर से सोंटा छीन लिया।

मुसाफ़िर को सारो गाँव बहुत पसन्द आया। बस कोई बीस-

नाशपातियों, केलों और सेबों के पेड़ों से घिरे हुए। सेब के दरख्तों में फूल आये हुए थे, कच्ची, हरी, छोटी-छोटी नाशपातियाँ लटक रही थीं और खेत मक्की के पौधों से हरी मखमल बने हुए थे। केलों के एक बड़े झुंड की गोद से गुनगुनाता हुआ नीला झरना था और उससे परे एक छोटा सा मैदान था जिसके बीच में मन्नू का पेड़ अपनी शाखें फैलाये हुए खड़ा था। उसका साया इतना लम्बा हो गया था कि परे और नीचे बहती हुई नदी के किनारे तक पहुँच रहा था। नदी छोटी सी, कितनी नाजुक, पतली सी नागिन की तरह बल खाती हुई उत्तर पूर्व के बर्फीले पहाड़ों से आ रही थी और डूबते हुए सूरज के पीछे-पीछे भाग रही थी। निगाह की अन्तिम सीमा पर वह दो पहाड़ों के पतले किनारों से गुजरती हुई मालूम होती थी। जहां अब सूरज चमक रहा था। उसके परे मुसाफ़िर का देश था। वह वहां कब वापस जायगा? क्या वह कभी वापस जा सकेगा? यहाँ कितना सुकून है। आराम, जिन्दगी, मौत, तीनों ने मिलकर यह सुन्दर सी घाटी बना डाली है। एकाएक उसकी आँखों के आगे रेलगाड़ी के घूमते हुए पहिये उछलने लगे। यह कैसा शोर है, यह इन्सान मौत से भी बढ़ कर "खामोशी" से क्यों इतना डरते हैं। हरवक्त शोर मचाते हैं, गला फाड़-फाड़ कर चिल्लाते हैं। किसलिये? यहाँ कितनी खामोशी है। शान्ति, सुन्दरता, सुख। नीचे पगडंडी पर नदी के किनारे से आँगी किसी बेफिकर हिरनी की तरह कदम रखती हुई आ रही थी। कन्धे पर पतली सी सोंटी थी, होटों पर एक बेमानी सा गीत, पाँव नंगे थे लेकिन चाल पर एक खामोश संगीत का सन्देह होता था। मुसाफ़िर ने अपनी किताब बन्द कर दी और आँगी की तरफ़ देखते हुए सोचने लगा---काश! वह चित्रकार होता, कितनी सुन्दर तस्वीर है, कितना दिलकश बैक ग्राउंड। आँगी के

हिलते हुए सुडौल पर मज़बूत बाज़ू, उसकी कमर का आकर्षक झुकाव,---अच्छा तो वह मूर्तिकार ही होता। दुनिया में किसी की आरज़ूएँ पूरी नहीं होतीं नहीं तो वह एक ऐसी मूर्ति तैयार करता कि यूनानी मूर्तिकार भी दंग रह जाते। इतने में आँगी ने उसे देख लिया। अजीब बात है, यह क्यों ठिठक कर खड़ी हो गई है? उसके होठों पर बेमानी गीत क्यों रुक गया है। वह सोंटी से ज़मीन पर क्या लिख रही है, अनपढ़ आँगी।

मुसाफ़िर ने ज़ोर से आवाज़ दी---"आँगी!

आँगी ने ज़रूर सुन लिया है। मगर उसने जवाब क्यों नहीं दिया? वह अब ऊपर चढ़ रही है। घाटी के पेच दर पेच रास्ते से गुज़रती हुई इधर आ रही है। मगर अब उसकी चाल बदली हुई है। बाज़ू बेपरवाही से अब नहीं हिल रहे हैं और गर्दन एक तरफ़ को झुक गई है। यह अब एक नई तस्वीर है, एक नई मूर्ति है, वह जंगल की देवी थी तो यह प्रभात की देवी है। इस मूर्ति की तराश निराली है, इस तस्वीर का रंग नया है, इस गीत की लय अनोखी है। काश! वह गायक ही होता!

आँगी घाटीपर चढ़ आई, वह मुसाफ़िर के क़रीब बैठ गई और सोंटी को हरी दूब पर रख कर सुस्ताने लगी। मुसाफ़िर ध्यान से उस ज़ुल्फ़ को तरफ़ देखने लगा जो आँगी के रुख़ पर उतर आई थी! एकाएक आँगी बोल उठी—"तुम वापस कब जाओगे राही! जब तुम अपना नाम भी नहीं बताते तो फिर मैं तुम्हें राही ही कहूँगी। ठीक है न?"

मुसाफ़िर ने किताब के पन्ने उलटते हुए कहा—"ठीक है, और फिर राही कोई इतना बुरा नाम भी नहीं। बात असल में यह है आँगी कि मैं यहाँ अपनी तन्दुरुस्ती को बेहतर बनाने आया हूँ। जब अच्छा हो जाऊँगा चला जाऊँगा।"

आँगी ने बड़े चाव से पूछा—"किधर जाओगे ?"

मुसफ़िर ने बड़ी बेपरवाही से अपना दायाँ बाज़ू उठाकर कहा—"उधर जाऊँगा।"

"तुम कहाँ से आये हो ?"

इस बार मुसाफ़िर ने दूसरा बाज़ू फैला कर कहा।—"उधर से आया हूँ।"

आँगी की आँखें असाधारण रूप से चमक गईं। रुकते-रुकते कहने लगी—"राही ! तुम कितने अजीब हो।"

और राही दिल में सोचने लगा—क्या सचमुच मैं अजीब हूँ ? क्या ये नज़ारे अजीब नहीं, यह ख्वाब की सी ख़ामोशी, यह मौत की सी ज़िन्दगी, यह आँगी के रुख़ पर बल खाती हुई जुल्फ़, क्या ये सब अजीब नहीं ! आँगी का कुरता जगह-जगह से फटा हुआ है और उसमें दर्जनों पेवन्द लगे हैं पर वह किस शान से गर्दन ऊँची किये नदी की तरफ़ देख रही है, जिसके पानी का रंग उसकी आँखों के समान ही नीला है। क्या यह अजीब बात नहीं ? आँगी के हाथ कितने मज़बूत नज़र आते हैं। लम्बी, पतली, मज़बूत उँगलियाँ, जो हलकी हत्थी पर ज़ोर से जम जाती होंगी, इन कलाइयों ने शायद कभी चूड़ियों की खनक नहीं सुनी, किस क़दर अजीब बात है, मगर ख़ुद मेरे हाथों में ज़नानापन झलकता है और एक चाक़ू से अपना क़लम बनाने में मुझे इतना वक़्त लगाना पड़ता है जितना आँगी को आधे खेत में हल चलाने में......

कई दिनों के बाद मुसाफ़िर की आँगी से मुलाक़ात हुई तो उसने कहा—"आँगी ! तुम्हें इतने दिनों से नहीं देखा।"

आँगी ने जबाब दिया—"अजीब बात है। मैं समझती हूँ कि तुम...इतने दिन कहीं ग़ायब रहे। अब...बहुत दिन हुए तुमने

वह अपनी तारों वाली बंसरी (वायलेन) नहीं सुनाई । अभी परसों की ही बात है। हम सब मन्नू के नीचे बैठे हुए फ़ीरोज़ से अलग़ोज़ा सुन रहे थे। तुम्हें पता है न, वह अलग़ोज़ा बहुत ही अच्छा बजाता है। किरन कहने लगी—पता नहीं क्यों, आजकल राही दिखाई नहीं देता। उससे उसकी तारों वाली बंसरी बजाने को कहते, क्यों ?" इतना कहकर आँगी ने मुसाफ़िर की तरफ़ देखा।

मुसाफ़िर की उंगलियाँ बेचैन हो गईं। उसने अपना हाथ आँगी के हाथ के इतना क़रीब रख दिया कि एक की उंगलियाँ दूसरे को छू रही थीं। धीरे से बोला—"हाँ, ठीक है। मैं आजकल लम्बी लम्बी सैरें करने के लिये गाँव से बहुत दूर निकल जाता हूँ। कभी कभी उन सनोबरों के घने जंगलों में चला जाता हूँ।"

"तुम्हारा अकेले कैसे जी लगता होगा ?"

"अकेला तो नहीं होता। कभी कोई किताब ले जाता हूँ, कभी कुछ लिखता हूँ, कभी अपनी तारों वाली बंसरी बजाता हूँ।"

आँगी ने हैरानी से मुसाफ़िर की तरफ़ देखा—"राही, तुम कितने अजीब हो !"

उसकी साँस में शहद की सी मिठास थी।

बरसात के आख़िरी दिनों में मक्की की फ़सिल पक गई। सारे गाँव वालों ने मन्नू के दरख़्त के आसपास बड़े बड़े खलिहान लगाये। मक्की के खलिहान और पीली पीली लम्बी घास के ज़ख़ीरे। मन्नू के पास ही तीन चार-जगहों पर पतली सी छोटी छोटी आप उग आने वाली घास को छील छील कर गोल-गोल टुकड़े तैयार किये। उन्हें गोबर से लेप दिया, फिर उन पर बढ़िया मिट्टी फेर दी। अब उनमें मक्की के भुट्टों के ढेर जमा

किये और उन पर बैलों को चक्कर दे दे कर चलाया ताकि दाने भुट्टों से अलग हो जायें। कुछ भुट्टे तो इस तरह से बिलकुल साफ हो गये, पर बहुत से भुट्टे बड़े सख्त जान निकले और बैलों के पाँव तले रौंदे जाकर भी उन्होंने मक्की के दानों को अपने जिस्मों से अलग न किया। फिर सारे गाँव वालों की टोलियां बनीं। लोग चांदनी रातों में इकट्ठे होकर बैठे हुए और भुट्टों से दाने अलग कर रहे हैं। नीचे बहती हुई नदी का धीमा सा शोर है, मजनूं की शाखों में चाँद अटक गया है और उस उदास गीत को सुन रहा है, जो नौजवान किसान और उनकी माएं, बहनें और पत्नियां गा रही हैं। फिर वह एकाएक चुप हो जाते हैं, खामोशी से मक्की के दानों को अलग कर रहे हैं। हवा के निहायत हलके हलके झोंके आते हैं और मजनूं का सारा दरख्त साँस लेता हुआ मालूम होता है। कोई आग तापता हुआ बूढ़ा किसान आहिस्ता से कह उठता है—और गाओ, बेटा, और। और फिर वह खुद ही कोई पुराना गीत शुरू कर देता है। उसे अपनी खत्म होती हुई जिन्दगी की बहार याद आ रही है, जर्द जर्द शोलों की चमक उसकी आँसुओं से भरी हुई आंखों में कांप कांप जाती है। गाते-गाते गीत के शब्द उसके मुंह में लड़खड़ा जाते हैं और वह चुप हो जाता है और आग के दहकते हुए कोयलों पर मक्की का एक भुट्टा भुन रहा है। नौजवान चरवाहियाँ आपस में कानाफूसी करती हुई एकाएक हंस पड़ती हैं, नौजवान चरवाहे उन्हें कनखियों से देख कर मुस्कराते हैं। फिर कोई विरह का गीत हवा में गूंज उठता है। नौजवान चरवाहियों की पतली पतली आवाजें भी उसमें शामिल हो जाती थीं। मालूम होता है कि किसी बड़े मन्दिर में बैठे हुए अपने परमात्मा के भजन गा रहे हैं। ये मक्की के दाने किसी मनके के अनगिनत दाने हैं। वह बूढ़ा किसान एक बूढ़ा पुजारी है, उस आग में

अगर और ऊद जल रहा है, जिसका धुआँ उठकर सारे मन्दिर को सुगन्धित कर रहा है। ये नेक और सचरित्र आत्मायें हैं, यहाँ अनन्त शान्ति है और प्रकृति की दया !

मारो गाँव वाले मुसाफ़िर को एक अज़ीज़ मेहमान बल्कि भाई की तरह समझते मानते और उसे अपनी ख़ुशियों में शरीक करते। भोले भाले किसान, अल्हड़ चरवाहियाँ नन्हें नन्हे बच्चे उसके गिर्द जमा हो जाते, 'मुसाफ़िर अपनी तारों वाली बंसरी सुनाओ, मुसाफ़िर अपनी तारों वाली बंसरी सुनाओ।' आँगी उसके कन्धे पर अपनी बाँह टेक देती और दूसरी बाँह से उसकी उंगलियों में छड़ी पकड़ा कर कहती' लो बजाओ राही ! अपनी तारों वाली बंसरी बजाओ।'––या फिर खलिहानों के लम्बे सायों में कोई उससे किसी कहानी की फ़रमायश करता, उस दुनिया की कहानी, जहाँ लम्बे लम्बे मैदान हैं बड़ी बड़ी नदियां हैं, मीलों तक फैले हुये शहर हैं, जहाँ लोहे के तारों पर लकड़ी के मकान क़तार बनाये हुये भागे जा रहे हैं, कहीं से कोई एक बटन दबा देता है और लाखों दीपक जल उठते हैं, आसमान पर उड़न खटोले घूम रहे हैं और नीचे बाज़ार में वह परियाँ फिरती हैं जिनके लिबास तितलियों के परों से बनाये गये हैं।

इस तरह मक्की के खलिहानों में कई चाँदनी रातें बीत गई रात मुसाफ़िर ने पहले खलिहान के पास फ़ीरोज़ का अलगोज़ा सुनते हुए महसूस किया कि आँगी वहाँ नहीं है। दूसरे टुकड़े में मक्की के दानों को भुट्टों से अलग करते हुए जिसने इधर उधर देखा पर आँगी कहीं नज़र न आई। तीसरे टुकड़े में मुसाफ़िर ने एक दिलकश कहानी सुनाई जिसका सम्बन्ध शहरों की ज़िन्दगी से था। उसकी निगाहें आँगी को तलाश करती रहीं लेकिन

बेकार। चौथे टुकड़े में उसने अपनी वायलेन को निकाला और एक सोज़ भरी धुन छेड़ी। बाक़ी टुकड़ों से उठकर सारे गाँव वाले चौथे टुकड़े में आ जमा हुए और मुसाफ़िर की बंसरी सुनने लगे। उनके चेहरों पर खुशी थी और हैरत भी.. पर आंगी कहां थी ?

आख़िर मुसाफ़िर ने पूछ ही लिया।

एक नौजवान किसान ने बेपरवाही से कहा—'वह खलिहान के उस तरफ़ बैठी है। अभी थोड़ी देर हुई, अपनी हम जोलियों में बैठी गा रही थी कि फ़ीरोज़ की बहन ने न जाने उसे क्या कहा। क्यों दिलशाद तुमने क्या कहा कि वह उठकर चली गई और झोली में बहुत से भुट्टे भरकर ले गई। अब अकेली बैठी दाने अलग कर रही होगी। कौन मनाता फिरे, किरन, तू क्यों नहीं जाकर मना लाती उसे।"

किरन हँस पड़ी, पर उसने कोई जवाब न दिया।

खलिहान के दूसरी तरफ़ मुसाफ़िर ने देखा कि कुछ मक्की के भुट्टे ज़मीन पर पड़े हैं और उनके क़रीब खलिहान का सहारा लिये हुए आंगी अधलेटी सी पड़ी है। आंखें अधखुली हैं और चांद की किरनों ने उसके सर के गिर्द एक हाला सा बना दिया है।

आँगी !

आँगी !!

आँगी !!!

मुसाफ़िर आंगी पर झुक गया। उसने आँगी के सर को अपनी बांहों में ले लिया, "क्या बात है आंगी ?"

आंगी उठ बैठी। उसने आहिस्ता से अपने आपको मुसाफ़िर की बाहों से अलग कर लिया और मक्की के दाने अलग करने लगी।

आखिर उसने घुटे हुए लहजे में कहा—"आह, मुसाफिर मुझे यहां से ले चलो।" यह कह कर उसने सर झुका लिया और चुपचाप रोने लगी।

मुसाफिर खामोशी से मक्की के दाने अलग करता रहा। उसने आँगी के आंसू नहीं पोंछे, उसने उसे प्यार नहीं किया। एकाएक एक पक्षी अपने सियाह पर फैलाये हुए तीर की तरह सामने से निकल गया। खलिहान के ऊपर दो तीन सितारे चमक रहे थे। आंगी के आंसुओं की तरह, और खलिहान के दूसरी तरफ औरतें नई दुल्हिन की सुसराल को विदाई का गीत गा रही थीं। मुसाफिर कि निगाहें पहाड़ों से परे सनोवरों के जंगलों को चीर कर विस्तृत मैदानों को ढूँढने लगीं, जहां उसका देश था—उसकी निगाहों में रेलगाड़ी के पहिये उछलने लगे।

जेहलम में नाव पर

गाटियालियां तक सफ़र अत्यन्त कष्टप्रद रहा। लारी मुसाफ़िरों से खचाखच भरी हुई थी और सूरज की गर्मी ने और भी उमस पैदा कर दी थी। मैं दरमियाने दर्जे में बैठा हुआ था (अब लारी वालों ने भी रेलवे की तरह विभिन्न दर्जे बना दि ैं) और अपनी क़िस्मत को कोस रहा था कि कोई मोटर नहीं मिली नहीं तो रास्ता आसानी से कट जाता। वैसे भी सारी लारी में दिलचस्पी का कोई सामान न था। मेरे दायीं तरफ़ मोर की तरह तुर्रा फैलाये हुए एक थानेदार साहब विराजमान थे जो बार बार मूछों को ताव देते जाते थे। सब से आगे पहले दर्जे की सीट पर यानी ड्राइवर के बिलकुल पास एक तहसीलदार साहब बैठे थे जिनकी हँसती पेशानी और ढीले साफ़े से उनके मानसिक सन्तोष का पता चलता था। मेरे सामने की सीट पर चार औरतें

बैठी थीं। दो बिलकुल बूढ़ी और अधेड़ आयु की थी; किन्तु जो औरत मेरे बिलकुल सामने बैठी थी और जो अपनी गोद में एक छोटे से बच्चे को लिये थी, वह बाक़ी औरतों से उम्र में कम और अधिक बदसूरत थी। वह कभी-कभी घूँघट की आड़ से मुझे देख लेती थी। इस संसार में हर व्यक्ति एक हसीन की तलाश में है। यह तो मैं दावे से नहीं कह सकता कि मैं उसकी आँखों में जँच गया। लेकिन इसमें भी कोई सन्देह नहीं कि मैं भी एक हसीन की तलाश में था। मैंने टाई की गांठ ठीक की और लारी के अन्दर चारों तरफ़ निगाह दौड़ाई। लेकिन, आह! उस मुसाफ़िरों से भरी हुई लारी में, जो अपनी मंज़िल की ओर बेतहाशा भागी जा रही थी, मुझे कहीं भी रोमान्स नज़र न आया। विरक्त चेहरे थे और हुक़्क़ा, या फिर थानेदार साहब का मच्छल। मैंने एक क्षण के लिये अपनी आंखें बन्द कर लीं और मन ही मन में कहा, कि इस लारी में सब कुछ हैं पर हुस्न नहीं है। दूसरे क्षण जब मैंने आंखें खोलीं तो देखा कि कम उम्र बदसूरत औरत अपने छोटे बच्चे पर झुकी हुई उसे अत्यन्त मद्धिम स्वर में मेरी गोद में चले जाने को कह रही थी।

उसने अपने सांवले माथे से पसीने की बूँदें पोंछकर घुटे हुए स्वर में कहा—"आह! मैं कितनी थक गई हूं, मेरी सांस घुटी जाती है।"

बेचारी ग़रीब औरत! मेरा मतलब यह है कि यद्यपि उसने रेशमी वस्त्र धारण कर रक्खे थे और अत्यधिक कुरूप थी फिर भी औरत स्वभावतः ग़रीब और कमज़ोर होती है। अतएव मैंने छोटे बच्चे को अपनी रानों पर ले लिया।

औरत ने कृतज्ञ दृष्टि से मेरी ओर देखा, फिर खिड़की से बाहर सर निकाल कर क़ै करने लगी।

'इश्क़ की मजबूरियां लाचारियां' मैंने जल्दी से बच्चे को थनेदार साहब की गोद में ढकेल दिया और ख़ुद उठ कर ड्राइवर को लारी ठहराने के लिये कहा।

ड्राइवर बोला'--'सरकार, यहां लारी ठहराने से क्या फ़ायदा। बस गाटियालियां का घाट कोई पौन मील रह गया है, वहीं ठहराऊँगा। कस्टम की चौकी पर, नदी के किनारे। नदी की ठंडी हवा से इनका जी ठीक हो जायगा।"

अतएव यही हुआ।

गाटियालियां और जेहलम नगर के बीच जेहलम नदी बहती है, इसलिये जेहलम नगर को जाने के लिये गाटियालियां की चुँगी पर प्रायः हर समय भीड़ सी लगी रहती है। रियासत जम्मू को जाते हुए मुसाफ़िरों का तांता, रियासत जम्मू से जेहलम आये हुए लोग, असबाब से लदे हुए बैल या गधे, चुंगी पर ठहरी हुई अनगिनत लारियाँ और नदी के किनारे बँधे हुए लम्बे लम्बे मछुए एक छोटे से बन्दरगाह का नज़ारा पेश करते हैं इसी भीड़ भाड़ में मैंने थानेदार साहब, तहसीलदार साहब और कम उम्र बदसूरत औरत को भी खो दिया। मेरा असबाब थोड़ा सा था इसलिये चुंगीवालों से जल्द छुटकारा मिल गया और एक छोटे से क़ुली पर असबाब लाद कर मैं नदी की ओर चला। जैसा कि मैंने पहले कहा, गाटियालियां तक सफ़र अत्यन्त कष्टप्रद रहा। सर में दर्द भी पैदा हो गया था, किन्तु अब जैसे जैसे नदी के फैले पानी से ठन्डी हवा के झोंके आने लगे, तबियत साफ़ होती गई। और जब नदी के किनारे पहुँचा हूं तो यह महसूस हो रहा था कि अभी अभी नहाकर उठा हूँ। लम्बी लम्बी दरियाई घास में जो किनारे पर उगी हुई थी; एक भीनी सुगन्ध थी, जिसने बेसुध नथुनों को सचेत कर दिया। जहां तक निगाह काम करती थी;

पानी ही पानी दिखाई पड़ता था। जिस पर चलते हुए बड़े बड़े मछुए और छोटी किश्तियां मल्लाहों की कोलाहलमय रागिनियों और लम्बी लम्बी डांडों के पानी को चीरने की मद्धिम आवाज़ें एक मादक दृश्य प्रस्तुत कर रही थीं।

छोटे से दुबले पतले क़ुली ने काउ के एक छोटे से पेड़ के नीचे मेरा असबाब उतार कर रक्खा। उसी पेड़ की छिदरी छिदरी छांव में एक लड़का और लड़की बहुत सा असबाब लिये बैठे थे। शायद किश्ती का इन्तज़ार कर रहे थे। मैंने क़ुली को जेब से दुअन्नी निकाल कर दी और उससे पूछा—"तुम्हारा नाम क्या है ?"

"अब्दुल्ला"

"तो अब्दुल्ला, हमें कहीं से किश्ती का इन्तज़ाम कर दो ! देखो, ज़रूर।"

अब्दुल्ला मुस्कराकर कहने लगा-"साहब, एक किश्ती तो मेरी अपनी ही है। ठहरिये, मैं अपने छोटे भाई को बुलाता हूँ। हम दोनों आपको पार ले चलेंगे। साढ़े तीन रुपये किराया होगा !"

जब अब्दुल्ला चला गया तो मैंने ज़मीन पर बैठकर इधर-उधर देखा। रेत के बड़े-बड़े टीले, काउ और तुंग के पेड़ों के झुण्ड, उड़ते हुए माही ख़ोर। फिर मैंने अपने साथियों की तरफ़ ध्यान दिया। लड़की पीठ मोड़े नदी की ओर मुँह किये बैठी थी। वह एक गहरे रंग की हरी साड़ी पहिने हुए थी, जिसका किनारा सुनहरा था। लड़का मेरी तरफ़ देख रहा था। उसने भूरे रंग का कोट और एक ख़ाकी नेकर पहिन रक्खी थी ! गले में एक ख़ुश रंग टाई भी थी। मुझे अपनी ओर मुड़ते देखकर कहने लगा—"आप कहाँ जा रहे हैं ?"

"जेहलम के पार एक गाँव है, वहाँ मेरा घर है, बस वहीं जा रहा हूँ। और आप ?" मैंने सवालिया निगाहों से लड़की को देखते हुए पूछा।

लड़के ने उत्तर दिया— हम लाहौर जा रहे हैं। मैं तो जम्मू में पढ़ रहा हूँ, पर यह मेरी बहन हैं। लाहौर में एफ० ए० में पढ़ रही हैं। इन्हें पहुँचाने जा रहा हूँ। इस सफर में बहुत परेशानी उठानी पड़ती है। अब यहाँ मल्लाह बहुत तंग करते हैं। आधे घन्टे से बैठे हैं कि कोई छोटी सी किश्ती हमारे लिये अलग मिल जाय तो उसमें सवार होकर पार चले जायँ। पर यह मल्लाह लोग कहते हैं कि कोई छोटी किश्ती सिरे से है ही नहीं। सब बड़े-बड़े मल्लुए हैं, जिनका किराया भी बहुत माँगते हैं। आठ रुपये दस रुपये...यह तो दिन दहाड़े डाका है। सचमुच कितनी परेशानी उठानी पड़ती है।"

मैंने उसे तसल्ली देते हुए कहा—"आप घबराइये नहीं, अब किश्ती मिल जायगी। मैं सब इन्तजाम किये देता हूँ। और हम सब आराम से जेहलम पार पहुँच जायँगे।"

लड़की ने मेरी तरफ देखा। अगर मैं यह कह दूँ कि उस जैसा सुन्दर और भोला भाला चेहरा मैंने आज तक नहीं देखा तो यह वास्तव में एक झूठ होगा। लेकिन यह कह देने में मुझे जरा भी संकोच नहीं कि उसके चेहरे में कुछ ऐसा विचित्र आकर्षण और मोहिनी थी जिसने मुझे एकदम मुग्ध कर लिया। केवल एक क्षण के लिये उसने मेरी ओर देखा और फिर वह घनी-घनी पलकें उसके गालों पर झुक गईं। वह काश्मीर की अतीव सुन्दरता का एक बेमिसाल नमूना थी। आकर्षक नख-शिख, सुडौल शरीर, मनोहर रंग। किन्तु जिस चीज़ ने मुझे अधिक प्रभावित किया वह उसकी जाहिरी खूबसूरती से बढ़कर

उसकी निगाहों की निराशा और उदासी थी, जिसे मैं एक झलक में ही पा गया। ओफ़! वह दुखमय गहराइयाँ! उस एक क्षण में मुझे ऐसा अनुभव हुआ मानो मैं बिजली की सी तीव्रता के साथ किसी गहरे समुद्र में डूबा जा रहा हूँ। फिर एकाएक मुझे ठोकर सी लगी और मैंने अपने आपको किनारे पर पाया। कितना विचित्र अनुभव था। किन्तु यह अनुभव केवल एक क्षण तक ही रहा। दूसरे क्षण वह जेहलम के फैले हुए पानी की ओर जिज्ञासु दृष्टि से देख रही थी। अब उसका चेहरा स्पष्ट और भोला भाला था। हर प्रकार की भावानओं से खाली। मेरे हृदय में एक विचित्र व्याकुलता उत्पन्न हो गई।

इतने में और दो मुसाफ़िर पेड़ के नीचे आकर बैठ गये। पहले एक बूढ़ा आदमी, श्वेत बालों वाला, लाठी टेकता हुआ आया और 'राम-राम' करता हुआ मेरे निकट बैठ गया। फिर बच्चा उठाये हुए वही कम उम्र की बदसूरत औरत दिखाई पड़ी। उसके साथ एक कुली ट्रंक और गठरी उठाये हुए था। वह औरत भी लड़की के पास जाकर बैठ गई और छोटा बच्चा हरी साड़ी के पल्लू को खेंचने लगा।

थोड़ी देर के बाद अब्दुल्ला भी आ गया और कुछ मिनटों के बाद उसका भाई एक किश्ती किनारे पर ले आया। अब्दुल्ला ने मुझसे मुस्कराकर कहा—"चलिये किश्ती में बैठिये।"

बूढ़ा आदमी उसको सम्बोधित कर बोला—"मुझे भी ले चलो बाबा, राम तुम्हारा भला करे।"

बदसूरत औरत भी उठ खड़ी हुई। कहने लगी—"अगर आप बुरा न मानें तो मैं भी इस किश्ती में बैठ जाऊँ। मुझे आज गुजरानवाला पहुँचना है। और अगर यह गाड़ी न मिली तो फिर...अब शाम भी होती जा रही है और मैं अकेली हूँ।"

हम सब किश्ती में जाकर बैठ गये। कुलियों ने माल-असबाब किश्ती में क़रीने से रख दिया।

अब्दुल्ला और उसके भाई ने आस्तीनें ऊपर चढ़ा लीं और एक-एक डंडा हाथ में लेकर किश्ती के दोनों सिरों पर खड़े हो गये।

अल्लाह का नाम लेकर किश्ती चली। अब्दुल्ला ने गाना शुरू किया—

जिस दावाँ लेंदियाँ बेड़ा पार वे
डाची वालिया मोड़ महार वे

अब्दुल्ला ने रुक कर पूछा—"आपको मेरे गाने पर कोई एतराज़ तो नहीं !"

लड़की ने जल्दी में कहा—"नहीं नहीं, ज़रूर गाओ, तुम्हारी आवाज़ बहुत अच्छी है।"

अब्दुल्ला ने फिर गाना शुरू किया। वही 'डाची' का पुराना गीत, जिसे गाने के लिये सोज़ चाहिये, साज़ नहीं।

एक साँडनी सवार को सहरा में से गुज़रते देख कर एक उदास हसीना, जो अपने प्रेमी की तलाश में परेशान है, उसे रुक जाने को कहती है और फिर उससे इलतिजा करती है कि तू मुझे सांडनी पर बैठा कर मेरे बिछुड़े हुए प्रेमी से मिला दे।

डाची वालिया ! मोड़ महार वे
डाची वालियां ! ले चल नाल वे

लड़के ने धीरे से कहा—"ज़ालिम बहुत अच्छा गाता है, क्या सुरीला गला है। मुझे गाने का बहुत शौक़ है, जरा सुनो तो....."

मैंने लड़की की तरफ़ देखा। वह अपने भाई के कन्धों से सर लगाये एक तरफ़ बैठी थी। धीरे से उसने आँखें बन्द कर

लीं। उसके होंठों पर एक अजीब निराशापूर्ण मुस्कराहट आ गई, बहुत धीरे से उसने अपने बाज़ू छाती पर बाँध लिये और टाँगें फैला कर सीट पर लेट गई। इस तरह कि मैं उसके आधे चेहरे को देख सकता था, उसके ख़ूबसूरत हाथों को, उसके नाज़ुक टखनों को।

मेरी डाची दे गुल विचे टलियाँ
मैं ताँ माही नूँ मनावन चलियाँ

अब्दुल्ला की सोज़भरी आवाज़ ने मेरे जज़्बात की सिमटी हुई दुनिया में हलचल पैदा कर दी। मेरा दिल एक अजीब दर्द की लज़्ज़त के मज़े लेने लगा। यह कैसी ख़लिश थी, हलकी, मीठी, ऐसा मालूम होता था कि गीत की हर लय में किसी विरह की मारी सुन्दरी की रूह खिंची चली आ रही है, या जेहलम नदी का फैला हुआ पानी एक सहरा है जिसमें हमारी किश्ती, 'डाची' बनी हुई प्रेमी की तलाश में जा रही है—रूठे हुए प्रेमी को मनाने के लिये।

डाची........मैं ताँ माही नू मनावन चलियाँ

लड़की ने चुपके से साड़ी के आंचल से अपने आँसू पोंछे। उसके भाई ने नहीं देखा लेकिन मैंने देख लिया। क्या डाची के सुन्दर गीत ने लड़की के दिल में प्रेम की दबी हुई आग को भड़का दिया था? नहीं तो ये आँसू कैसे? मेरा दिल इस भेद को जानने के लिये बेताब हो गया। वह किस बिछुड़े हुए प्रेमी की याद में रो रही थी? मैंने चाहा कि मैं गुलाब की नर्म नाज़ुक पंखुड़ियों से उसके आँसू पोंछ डालूँ और उससे पूछूँ—"बता हे सुन्दरी! तुझे क्या ग़म है?"

इसके बजाय मैंने उस बदसूरत औरत की निगाहें अपने चेहरे पर जमी हुई देखीं। मुझे देखकर उसने लजाकर अपनी आँखें नीची कर लीं और अपने बच्चे पर झुक गई।

छलक......छलक......छलक......छलक।

किश्ती भागी जा रही थी, डाँडें बारी-बारी हिल रही थीं। पश्चिम में सूरज डूब रहा था, नदी में डूब रहा था। नदी की ख़ामोश सतह पर एक अजीब, नाज़ुक, निराली जादूभरी रोशनी फैल गई थी। मैंने समझा यह सूर्यास्त नहीं, प्रभात का प्रारम्भ है, पश्चिम नहीं पूर्व है, प्रकाश का महास्रोत है, हम अमर इन्सान हैं जो इस कभी न डूबने वाली किश्ती पर सवार होकर अपने प्रेमी से मिलने जा रहे हैं, अपने अमर प्रेमी से।

मैं ताँ माही नूँ मनावन चलियाँ

चप......चप......शप......शप......

किश्ती भागी जा रही थी।

शाम हो गई। अँधेरा बढ़ता गया, अब्दुल्ला ख़ामोश हो गया। फिर एक मनोहर ढंग से सफ़ेद, दूध जैसी बेदाग़ चाँदनी खिल गई और मुझे डल में तैरते हुए कँवल के फूल याद आ गये। किश्ती के चारों तरफ़ दूर-दूर तक पानी की हलकी-टूटती हुई लहरों पर ऐसा मालूम होता था कि कँवल के लाखों फूल खिल गये हैं।

बूढ़ा धीरे-धीरे 'राम-राम' जप रहा था। बदसूरत औरत चोर निगाहों से कभी मुझे, कभी ख़ामोश लेटी हुई लड़की को देख लेती थी। लड़के ने एक दो बार अपनी बहन की तरफ़ देखा और फिर मुझको सम्बोधित कर कहा—"बेचारी श्यामा, सफ़र की थकान से चूर होकर आख़िर सो गई है। कितना परेशानी भरा सफ़र है।"

क्या वह सचमुच सो रही थी या आँखें बन्द किये कुछ सोच रही थी। वह बिलकुल बेसुध, अचेत, एक संगमरमरी

मूर्ति के समान पड़ी थी, या शायद वह किसी सपने की ठण्डी छाँव में सितारों की कँपकँपाती हुई असीम, अनन्त दुनिया में अपने प्रेमी से मिल रही थी, या फिर उसकी स्वच्छन्द आत्मा चांद की किरणों में भटकी हुई किसी को तलाश कर रही थी। हाँ मगर किसको ?

आखिर एक लम्बे अरसे के बाद इस लम्बी खामोशी को अब्दुल्ला ने तोड़ दिया—"लो वह किनारा आगया।" उसने डाँड को ज़ोर-ज़ोर से हिलाते हुए कहा।

किनारे पर पहुँच कर मैंने लड़के से कहा—"आप जाकर टाँगा ठीक करें, मैं यहाँ क़ुलियों का इन्तज़ाम करता हूँ।"

टाँगेवालों का अड्डा कोई फ़र्लांग भर दूर था। लड़का टाँगे का इन्तज़ाम करने गया। मैंने अब्दुल्ला से कहा—"ज़रा कहीं से क़ुलियों को तो बुलवा दो।"

अब्दुल्ला कहने लगा—"अब इस वक़्त यहाँ नदी के किनारे क़ुली कहाँ से आयँगे।"

"तो फिर अब क्या किया जाय ?"

"मेरी समझ में तो यही आता है कि हम दोनों भाई दो तीन फेरे लगा कर आपका असबाब टाँगों पर रख दें चार आने फ़ी फेरा लेंगे।"

"अच्छा योंही सही। उठाओ अस्बाब और इन (बदसूरत औरत की तरफ़ इशारा करके) को भी अड्डे पर ले चलो।"

अब्दुल्ला के आख़िरी फेरे पर मैंने किश्ती में सोई हुई लड़की को जगा दिया—"उठिये, अब तो जेहलम का दूसरा किनारा भी आ गया।"

मेरी ज़बान से पहला शब्द सुनकर ही वह उठ खड़ी हुई। वह अवश्य ही सो नहीं रही थी। चाँदनी रात में उसका रंग

ज़ाफ़रान के फूल की तरह पीला पड़ गया था, और होंठों पर वही निराशाभरी मुस्कराहट थी।

मैंने बटुए से एक रुपया निकाल कर कहा—"एक रुपये की रेज़गारी होगी?"

उसने हैंड बेग खोलकर पैसे निकाले और मुझे दे दिये। वह नर्म व नाज़ुक उंगलियाँ बर्फ़ की तरह ठंडी थीं।

मैंने अब्दुल्ला को इनाम दिया। उसने झुक कर हमको सलाम किया और फिर हमारी तरफ़ पीठ मोड़ कर किश्ती में बैठ गया।

हम ख़ामोश चले जा रहे थे। हमारे आगे बूढ़ा लाठी टेकता जा रहा था। चन्द क़दम चलकर मैंने श्यामा से हिम्मत करके पूछा—"आप किश्ती में रो रही थीं, क्यों?"

वह ख़ामोश चलती गई, सर झुकाये हुए।

मैंने फिर कहा—"विश्वास कीजिये मैंने सच्चे दिल से सवाल किया है, मैं दिल से चाहता हूँ कि आप अपना दुख मुझसे कह सकें और मैं आपके किसी काम आ सकूँ, कोई हर्ज है?"

उसने भीगी आँखों से मेरी तरफ़ देखा। वह कुछ कहना चाहती थी कि एकाएक कुछ सुनकर वह एक हलकी सी चीख़ मार कर ठिठक गई। वह गिरने को थी कि मैंने उसे एक बाज़ू से थाम कर सहारा दिया। अब्दुल्ला चाँद की तरफ़ मुँह किये हुए गा रहा था—

माड़ी डाची दे गुल विच ढोलना
झूठे सजनाँ दे नाल की बोलना
डाची वालियाँ मोड़......

आवाज़, ऐसा मालूम होता था कि दूर परे जेहलम के फैले हुए पानी पर चाँद की जादू बरसाती किरनों पर काँपती हुई आ रही है। अन्दाज़े बयान में बला की शोख़ी थी और शब्दों में एक बेपनाह व्यंग, जो दिल को छेदे डालता था। मैंने लड़की की तरफ़ देखा। वह काँप रही थी और जल्द क़दम उठाने की कोशिश कर रही थी। शायद वह उस करुण गीत के बेपनाह तूफ़ान से भागना चाहती थी। वह तूफ़ान जो उसकी बेक़रार रूह के पीछे भाग रहा था।

बाक़ी रास्ता हमने चुपचाप तय किया।

जब मैं उन्हें टाँगों पर सवार कर चुका तो लड़के ने हाथ मिलाते हुए कहा—"धन्यवाद, बहुत बहुत धन्यवाद, हमने आपको बहुत कष्ट दिया.. .क्या आपका गाँव यहाँ से नज़दीक है... ...?"

"बस कोई तीन चार मील होगा, वह सीधी पगडंडी जा रही है.....पैदल ही जाना होगा.....।"

बदसूरत औरत ने मेरी तरफ़ देखकर हाथ जोड़े और फिर सर झुका लिया।

मैंने हाथ जोड़ कर सर झुकाया। दो बार, एक बार बदसूरत औरत को देखकर और आख़िरी बार लड़की को देखकर। लड़की ने मेरी तरफ़ अस्पष्ट, ख़ुमारभरी, उदास निगाहों से देखा। वे निगाहें शायद खुलकर दिल का राज़ कह देना चाहती थीं, पर कामयाब न हो सकीं। उन आँखों में एक हलकी सी चमक पैदा भी हुई लेकिन फिर तुरन्त ही गुम होगई। जैसे कोई सुन्दर कंकड़ समुद्र के गहरे नीले पानी में खो जाय। उसका दायाँ बाज़ू थोड़ा सा ऊपर

उठा फिर नीचे गिर गया। चूड़ियों की झंकार पैदा भी हुई और फिर एक क्षण में काँपती हुई कहीं विलीन होगई—जैसे आसमान से कोई तारा टूटे और वायुमंडल में घुल जाय।... ...अब वह नज़र नीची किये साड़ी का पल्लू ठीक कर रही थी।

"गुड बाई" मैंने जल्दी से कहा। टाँगा चलने लगा। लड़के ने ज़ोर से हाथ हिलाते हुए कहा—"गुड बाई।"

सीधी, खेतों के बीचों बीच पगडंडी जा रही थी। आकाश पर सितारों के बीच भी इसी तरह एक पगडंडी बनी हुई थी... यह सफ़र कब शुरू हुआ ?—मैं सोचने लगा—ये दोनों पगडंडियाँ किधर जा रही हैं ? ... यह सफ़र कभी ख़त्म होगा ?

हुस्न और हैवान

प्रभात की उड़ती, घुलती हुई स्याही और सफ़ेदी में वह एक छोटे से नाले के समीप पहुँच गया और अपने कपड़े उतारकर नंगधड़ंग नाले में घुस गया। पानी एक-दो जगह इतना गहरा था कि कमर तक आता था। पाँव कहीं कोमल, मुलायम रेत और नीले-नीले पत्थरों पर फिसलते मालूम होते थे। शोख़ चंचल मछलियाँ अपने रुपहले धड़ों को हिलाती हुई इधर-उधर घूमती जाती थीं। कई पत्थरों पर ऊदी, हरी या स्याह काई जमी हुई थी, और जब नहाते-नहाते असाध्य तौर पर उसके पाँव उन पत्थरों से जा लगते तो उसके शरीर के रोएँ-रोएँ में एक विशेष प्रकार के ऐन्द्रिक आनन्द का ज्ञान जाग उठता और प्रसन्न होकर मुँह में पानी भरकर ज़ोर-ज़ोर से ग़ुलु-ग़ुलु-ग़ुलु करने लगता और कुल्लियों के छोटे-छोटे फ़व्वारे छोड़ता और हँसता, गाता,

पानी में नाचता और दोनों हाथों से छींटे उड़ाता जैसे उसके सम्मुख उसका गहरा दोस्त खड़ा हो।

लेकिन नाले में उस समय उसके सिवा और कोई नहीं था। सिर्फ़ एक चट्टान के किनारे एक सुर्ख़ रंग का केकड़ा अपनी चीनी आँखों से उसकी दिलचस्प हरकतें देख रहा था और उसकी विचित्रता से आनन्दित हो रहा था। नाले के तीनों तरफ़ ऊँची-ऊँची घाटियाँ थीं। चौथी तरफ़ नाला बहता हुआ झेलम नदी से मिल जाता था। झेलम के पार मरी की पर्वतराशि फैली हुई थी और उनके सीने को चीरती हुई मोटर की सड़क एक बड़े अजगर की सफ़ेद केंचली की तरह बल खाती हुई दिखाई देती थी। नीरवता, पूर्ण सन्नाटा, न मोटर की घौं-घौं न चीड़ के वृक्षों की सायँ-सायँ, न गटारियों की करायँ-करायँ। नाले का पानी तक सोया हुआ मालूम होता था और कहीं-कहीं चट्टानों के समीप के पानी गुजरने से तिरिल रिल तिरिल रिल की आवाज़ पैदा होती थी। लेकिन यह आवाज़ इतनी मद्धिम-सी मालूम होती थी कि सन्नाटे से सध्वनित जान पड़ती थी। वह आँखें बन्द करके पानी में ग़ोता लगाता और ग़ोता लगाते ही पानी में आँखें खोल देता। और कुछ क्षणों के लिये इस अन्तर-जल सुन्दर संसार का तमाशा देखता और फिर जब उसकी साँस घुटने लगती तो वह अपना सिर पानी की सतह के ऊपर उठा लेता और उस तिरिल रिल तिरिल रिल की मद्धिम मीठी आवाज़ को सुनता जो या तो सृष्टि की नीरवता की प्रतिध्वनि थी या उसकी तेज़-तेज़ साँस की लय या प्रभात के सूक्ष्म चुम्बनों का स्पर्श।

नहाते-नहाते जब उसे अपने बदन के प्रत्येक रोम में बर्फ़ की सुइयाँ-सी चुभती महसूस हुईं और जब नाले के तल्ला पर उड़ते हुए बादलों के किनारे सूरज के उबलते हुए सोते-से दमकने लगे तो उसे अपने दिन भर के सफ़र का विचार आया।

बीस मील का लम्बा सफ़र और उसे कल सुबह थलीर के मिडिल स्कूल में हेडमास्टर का चार्ज लेना था। पथ अज्ञात था और कठिन भी। आशा थी कि रास्ता पूछ-पूछ कर वह लक्ष्य पर जा पहुँचेगा। कुछ अरसे के ज़ेहनी असमंजस के बाद वह नाले से बाहर निकला, झोले से तौलिया निकालकर बदन पोंछा, फिर नाश्ता निकाला और एक ऊँची चट्टान पर बैठकर खाने लगा। रोटी के कणों ने जो बार-बार पानी में गिरते थे मछलियों को अपनी ओर आकर्षित कर लिया और वह चट्टान के गिर्द इस तरह जमा हो गईं जिस तरह मक़नातीस (चुम्बक) के गिर्द लौहचूर्ण के ज़र्रे इकट्ठे हो जाते हैं। रोटी, उसने सोचा, दुनिया में सब से बड़ा मक़नातीस है और अब तो वह सुर्ख़ रंग का केकड़ा भी अपने अनगिनत हाथ हिलाता हुआ, पानी में तैरता हुआ, उन कणों की ओर आ रहा था। बीस मील का सफ़र था लेकिन इस सफ़र के आख़िर में भी एक रोटी का टुकड़ा ही लगा हुआ था जिसकी तरफ़ वह खिंचा जा रहा था। अचानक उसे महसूस हुआ कि यह बीस मील बंसी के एक लम्बे तार की तरह थे जिसके सिरे पर एक हुक में एक रोटी का टुकड़ा लगा हुआ था। नाश्ता खाते-खाते उसने अपने आपको उस बेबस मछली की तरह जाना कि जिसके गले में बंसी का काँटा अटक गया हो। वह खाँसने लगा और उसकी आँखों में आँसू भर आये। फिर वह मुस्कराने लगा, अपनी कल्पना की छलाँग पर, नाले के स्रोत पर। बादलों का रंग गुलाबी हो गया था और उनके पीछे तरल सोना उबलता हुआ मालूम होता था। थोड़ी देर में यह उबलता हुआ तरल सोना बादलों को फाड़कर बह निकलेगा और दिन चढ़ जायगा। उसे अब चलना चाहिये।

जब वह चला तो केकड़े ने एक मछली को पकड़ लिया और

अब वह अपनी चीनी आँखों से अपने शिकार की ओर उल्लास-पूर्ण निगाहों से देख रहा था।

पहले पाँच मील की सुक्खड़ चढ़ाई थी। पगडण्डी बल खाती हुई ऊपर ही ऊपर चढ़ती चली जा रही थी जैसे आकाश को छूकर ही दम लेगी। बेवक़ूफ़ पगडण्डी, भला आकाश को कौन छू सकता है ? उसे पगडण्डी की इस अशिष्ट हरकत पर बहुत गुस्सा आया। अगर वह आराम से मज़े-मज़े में चलती चली जाती तो न मुसाफ़िरों को थकान महसूस होती न उसकी साँस की धौंकनी तेज़ होती, न उसका शरीर पसीने में शराबोर होता। लेकिन अब यह सब कुछ था, और पगडण्डी थी कि बराबर ऊँची होती चली जा रही थी जैसे वह आकाश को छू लेगी। पडगण्डी की यह अभिलाषा एक अपूर्ण आकांक्षा की सी थी। क्योंकि वास्तव में आकाश कहीं भी नहीं है, इसकी वास्तविकता एक भ्रम की भाँति है। जो चीज़ न हो उसे कोई क्योंकर पा सकता है। लेकिन पगडण्डी...ख़ैर, मुझे अब सुस्ता लेना चाहिये। उसने सोचा मुझे इस पगडण्डी पर बीस मील चलना है। पगडण्डी के पाप पगडण्डी के मुसाफ़िरों को भी अपनी लपेट में ले लेते हैं; बाइबिल में साफ़ लिखा है। यही अच्छा है कि इस फगवाड़े के वृक्ष के नीचे थोड़ी देर विश्राम कर लिया जाय।

वह पहाड़ी अंजीर के वृक्ष के नीचे सहारा लगाकर बैठ गया। इस वृक्ष के सामने अंजीर का एक और वृक्ष था। नीचे एक तलहटी थी जहाँ दो छोटे-छोटे खेतों में मकई के पौदे उगे हुए थे। उनके परे बंज की बाढ़ थी और उससे परे वह नीला आकाश और नगी की पर्वत-शृङ्खला और उनके वक्ष को चीरती हुई मोटर की सड़क। उसने इस दृश्य की ओर देखते-देखते यह मालूम कर लिया कि यह सारा दृश्य नक़ली है। आकाश की

नीली सतह पर किसी अज्ञय चित्रकार ने कुछ आड़ी-तिरछी रेखाएँ खींच दी थीं। इसमें जान बिलकुल न थी, न रूप, न लावण्य। फिर कहीं से एक लारी चींटी की तरह टींगती हुई मोटर की सड़क पर चलती नज़र आई। आकाश पर चील अपने पर तोलती हुई नज़र आई। बंज की बाढ़ से एक पुरुष और स्त्री बाहर निकले और मकई के पौदों में घुस गये। सामने अंजीर के वृक्ष पर दो चिड़ियाँ नज़र आईं और फुदक-फुदक कर एक दूसरे से चोंच मिलाने लगीं। अब हर तरफ़ हरकत थी। निश्चल तस्वीरों में प्रकम्पन पैदा हो गया था। नीरवता में संगीत उत्पन्न हो गया था और आकाश की नीली सतह पर समुद्र की-सी गहराई। उसने सोचा द्रव्य से गति और गति से कल्पना पैदा होती है। इस पगडण्डी की कल्पना की ओर देखो। इसकी हिम्मत, इसका साहस, इसके प्रयत्न की सराहना न करना जुल्म होगा। और एक मैं हूँ कि आध घण्टे से यहीं सुस्ताने बैठा हूँ और अभी तक वह स्त्री और पुरुष खेतों से बाहर क्यों नहीं निकले। शायद खेतों की नलाई कर रहे हैं। चिड़ियों ने हँस-हँसकर कहा, चूँ चूँ चूँ, यानी हम ज्यादा अच्छी तरह जानते हैं, जाओ अपनी राह लो और हमारी खुशियों में खलल न डालो। वह घुटनों का सहारा लेकर उठा और आगे चल पड़ा।

पगडण्डी का रंग ज़र्द था, किनारों पर हरी घास झुकी हुई थी। कहीं-कहीं जंगली फूल खिले हुए थे। लेकिन मुर्झाये-से जैसे सफ़र की थकान से चूर हो गये हों। जैसे उन्हें प्यास लगी हो और उन्हें कोई पानी देनेवाला न हो। वह आगे बढ़ता गया और उनकी प्यास चमक उठी। पगडण्डी अब एक ऊँचे खेत की मेंड़ के नीचे से गुज़र रही थी। उसने सिर उठाकर देखा तो एक सुकुमार शरीर बकरी खेत की मेंड़ पर चरती नज़र आई।

उसने अपने सूखे होंठों पर जबान फेरी और बकरी ने सिर उठा कर एक उचटती नजर से उसकी तरफ़ देखा और फिर, ऊँ-ऊँ में-में, करके मुँह फेर लिया, जैसे कह रही हो, मियाँ आगे बढ़ो, यहाँ कोई पानी-वानी नहीं, मेरे थनों में जो दूध है वह मेरे मालिक के लिये है।

उसने टोपी उठाकर कहा—"बहुत अच्छा मादाम, तुम्हारा शरीर तुम्हारे पति के लिये है। तुम्हारा दूध तुम्हारे मालिक के लिये है। तुम्हारी आत्मा हिंदुस्तानी औरत की तरह है! इस देश में प्यासे मुसाफ़िरों के लिये कोई ठिकाना नहीं। सफ़र को इसीलिये यहाँ एक झंझट समझा जाता है; ख़ुशी नहीं और काले पानी पार जाना तो एक पाप है। बहुत अच्छा मादाम, यूँही सही क्षमा चाहता हूँ।"

प्यास से हलक़ में काँटे-से चुभने लगे। और यह पगडण्डी अभी ऊपर ही जा रही थी। रास्ते में उसे एक किसान मिला, उसने पूछा—"भई, यहाँ कोई पानी का चश्मा है?"

"है तो सही, लेकिन यहाँ से कोई तीन मील ऊपर चढ़कर—"

"बहुत प्यास लगी है भाई, कोई चश्मा निकट हो तो बता दो, बड़ा उपकार होगा।"

किसान ज़मीन पर बैठ गया। उसने अपनी लाठी से बंधी गठरी को खोला और उसमें से एक केसरी रंग की मोटी-सी तरेड़ी निकाली, ख़ूब रसदार थी और ताज़ी। उसने उसे पत्थर पर तोड़कर उसके दो टुकड़े कर दिये। आधी तरेड़ी उसे देकर कहा—"पहले तो इसका रस पी जाओ, फिर रास्ते में इसकी फाँकें बनाकर खाते जाना, भगवान ने चाहा तो तीन मील तक अब प्यास न लगेगी।"

खट्टा-सा स्वादिष्ट रस था जैसे गोलगप्पे बेचनेवाले के यहाँ होता है। बीजों समेत उसके हलक़ में उतरता चला गया। और उसकी आँखों की चमक फिर लौट आई। तरेड़ी का एक क़तला-सा उतारकर खाते हुए उसने किसान को धन्यवाद कहा। किसान ने आत्मीयता से पूछा—"कहाँ जा रहे हो ?"

"मौज़ा धरीला।"

"ठीक यही रास्ता है।"

"और तुम कहाँ जा रहे हो ?"

"मैं कोहाले जा रहा हूँ, सुना है वहाँ मोटर सड़क पर बोझ उठानेवालों की जरूरत है, अबकी फ़सल कुछ अच्छी नहीं हुई......।"

लगान, रिश्वत, नम्बरदार, बच्चे, बीबी। किसान गठरी काँधे पर रखकर नीचे की तरफ़ उतर गया। यह मक़नातीस (चुम्बक) की दूसरी सिम्त थी, या वही बंसी का काँटा जो मुक्ति पाने तक ज़िन्दगी के गले में अटका रहता है ? प्यास बुझ चुकी थी और वह तरेड़ी के क़तले खा रहा था, एक सरो के वृत्त के नीचे एक बूढ़ा किसान और एक नन्हीं-सी लड़की नज़र आई—किसान हँसकर मुर्ग़े की बोली बोल रहा था, "कुकड़ कूँ-कुकड़ कूँ।"

नन्ही लड़की हँसते-हसते लोट-पोट हो गई—"अब्बा कुकड़ कूँ, कुकड़ कूँ।"

मुसाफ़िर को तरेड़ी खाते देखकर वह मचल उठी—"अब्बाजी मैं भी तरेड़ी खाऊँगी, मैं भी तरेड़ी खाऊँगी।"

मुसाफ़िर मुड़ा और सरो के वृत्त के नीचे जाकर बैठ गया।

"सलाम, ओ राही।" बूढ़े ने कहा।

"सलाम बाबा।"

"मैं तरेड़ी खाऊँगी अब्बाजी !"

मुसाफ़िर ने तरेड़ी का एक क़तला लड़की के हाथ में दे दिया। लड़की के गुलाब-से कपोल अरुणिम हो गये। उसने उसे अपनी गोद में ले लिया। वह बड़े मज़े से उसकी गोद में बैठकर तरेड़ी खाने लगी।

"कितनी प्यारी लड़की है, यह तुम्हारी लड़की है न, क्या नाम है इसका ?"

'जरी (यानी नन्ही) जी, यह मेरे बेटे की लड़की है लेकिन यह मुझे अब्बा कहकर पुकारती है, क्योंकि मेरा बेटा लाम पर गया हुआ है, यह उस समय चार महीने की थी।'

लाम, युद्ध, यह सुन्दर गोल चेहरा, गुलाबी गाल, चमकती हुई निष्कपट आँखें, मशीनगनों की तड़ातड़, चीख़ते हुए बम और तारों पर उलझी हुई आँतें। उसने सोचा कि कुछ प्यासें ऐसी होती हैं कि उन्हें बुझाने के लिये मनुष्य, मनुष्य को क़तल कर डालते हैं, बिलकुल इसी तरेड़ी की तरह, लेकिन तरेड़ी तो एक निश्चल चीज़ है और मनुष्य एक चंचल विकल शोला।

द्रव्य से गति पैदा होती है और गति से कल्पना। लेकिन इस मनुष्य की कल्पना देखो और फिर इस पगडण्डी की कल्पना......मक़नातीस (चुम्बक) की दो विपरीत सिम्तें।

बूढ़े ने चिल्लाकर कहा—'कुंकड़ूँ कूँ !"

तीन मील ऊपर चढ़कर वह एक चश्मे के किनारे पहुँच गया। वृक्षों के झुण्ड में बहुत से राही बैठे हुए थे। चश्मे के मुँह पर लकड़ी का नल लगा हुआ था। जिसमें से पानी एक मोटी धार की तरह नीचे गिरता था। उसने अपनी ओक इस मोटी

धार के नीचे रख दी और पानी पीने लगा। पानी उसके हलक़ के नीचे उतर रहा था, उसकी आँखों में जा रहा था। उसके बालों में, उसके गालों पर बह रहा था। पाँव धोकर और ताज़ा-दम होकर वह वृक्षों के झुण्ड की तरफ़ चला गया। यहाँ बहुत से लोग बैठे हुए थे, कई एक खाना तैयार कर रहे थे। कुछ लोग बनिये की दूकान से आटा और गुड़ ख़रीद रहे थे जो वृक्षों के झुण्ड के क़रीब ही थी। एक घास के प्लाट पर चन्द एक खच्चरें चर रही थीं और उनका मालिक उन्हें दाने के लिये क़रीब बुला रहा था। एक राही मकई की रोटी गुड़ के साथ खा रहा था और तीन ग्रासों के बाद पानी के दो घूँट पी लेता था। मकई की रोटी क़रीब-करीब हर एक के पास थी, किसी के पास पिसा हुआ नमक-मिर्च था तो किसी के पास प्याज़। हाँ, सालन किसी के पास न था, न अचार, न मुरब्बे, न मक्खन। यह लोग खच्चरों की तरह अत्यन्त तन्मयता से अपने जबड़े हिलाने में व्यस्त थे। मकई की रोटी, उसे मालूम था, इतनी ख़ुश्क होती है कि मुँह का गीलापन उसे हलक़ से नीचे उतारने के लिये काफ़ी नहीं होता। इसीलिये तो बार-बार पानी पिया जाता है। जब सालन मौजूद न हो तो पानी ही श्रेष्ठ सालन होता है। एक हज़ार साल की व्यवहारिक और आर्थिक प्रगति के बाद भी मानव-सभ्यता इससे ज़्यादा कुछ न कर सकी कि मनुष्यों की अधिक तर आबादी को ख़ुश्क रोटी और पानी मुहैया कर सके, ख़ुश्क रोटी और पानी और खच्चरों की तरह चलते हुए जबड़े और ज्योतिहीन आँखें। उसने चुपड़ी हुई गेहूँ की लचकीली रोटी पर मुरब्बा लगाते हुए सोचा कि वह आज इस वृक्षों के झुण्ड के नीचे बैठे हुए किसानों में मुरब्बा और मक्खन और अचार बाँट कर हज़ारों साल की परम्परा को तोड़ देगा। फिर उसने सोचा कि उसे अभी पन्द्रह मील और सफ़र करना है और वैसे भी

हज़ारों साल की भूक मुरब्बे के एक छोटे टुकड़े से नहीं मिटाई जा सकती।

जब वह अपना थैला बन्द करके चलने को था तो उसकी निगाह आदमियों की एक टोली की तरफ़ गई जो ऊपर पगडण्डी से चश्मे की ओर आ रही थी। दो आदमी जिनके सरों पर सुर्ख़ व ज़र्द पगड़ियाँ थी और जिन्होंने ख़ाकी रंग के वस्त्र पहन रखे थे और जिनके कन्धों पर पीतल के चमकते हुये बिल्ले लगे हुए थे, एक युवक किसान को अपने बीच में पकड़े हुए ला रहे थे। कुछ अरसे बाद उसने देखा कि इस युवक के हाथ पीठ पर हथ-कड़ियों में बंधे हुए थे। उनके पीछे-पीछे एक और आदमी आ रहा था और वह अपने साथ एक लड़की को लिये चला आ रहा था और उससे मुसकरा-मुसकराकर बातें कर रहा था। लड़की की निगाहें नीची थीं और क़दम लड़खड़ाये हुए।

जब वह वृक्षों के झुण्ड के नीचे पहुँचे तो सारे किसान राही उनके सम्मान के लिये खड़े हो गये। बनिया भी अपनी दुकान से बाहर निकल आया और हाथ जोड़कर उनके सामने जा खड़ा हुआ। फिर उनके लिये दो चारपाइयाँ दुकान से बाहर निकाल लाया और उन पर उजली चादरें बिछाकर उन्हें बैठने के लिये कहने लगा। उनकी प्रमादमय शान और इनकी त्रस्त नम्रता कहे देती थी कि यह नये लोग ऐसी रहस्यपूर्ण शक्ति के मालिक हैं जो इन दूसरे मनुष्यों को हासिल नहीं। एक आदमी जो इन सब का सरदार मालूम होता था उसने लड़की को परे एक वृक्ष के नीचे बैठने को कहा। और फिर उसने उन दो आदमियों को सम्बोधन किया जो उस युवक को पकड़े हुए थे—

"ओ दुल्ले, शहबाज़, इस हरामी की हथकड़ी ज़रा ढीली कर दो और उसे पानी वग़ैरा पिलाओ।"

बनिया बोला—"हजूर जल लाऊँ, ठंडा मीठा शरबत, कोहाले से नई नई मिश्री मँगवाई है।"

दुल्ला और शहबाज़ किसान को हथकड़ियों से जकड़े हुए चश्मे की ओर ले जा रहे थे, जहाँ पहले ही एक खच्चरवाला अपने खच्चर को पानी पिला रहा था।

हजूर ने उत्तर दिया—"हाँ, हाँ, शाहजी शर्बत पिलाइये, बहुत प्यास लगी है और हम खाना भी यहीं खायेंगे। कोई मुर्ग़ी वग़ैरह है?"

"जी हजूर, अभी सब इन्तज़ाम हुआ जाता है।" बनिये ने हाथ जोड़ते हुए, बत्तीसी निकालते हुए, सिर हिलाते हुए कहा।

खच्चरवाला खच्चरों को पानी पिलाकर उन पर सामान लादने लगा। दुल्ला और शहबाज़ किसान को पानी पिलाकर वापस ले आये और उसे अपने सरदार के सामने बिठा दिया।

हजूर ने किसान से कहा—"कान पकड़ो।"

"मैं कहता हूँ हरामज़ादे, कान पकड़ो!"

किसान ने अपनी बाहें टाँगों के बीच से गुज़ारकर कान पकड़े। दुल्ले ने पत्थर की एक भारी सिल उसकी पीठ पर रख दी। कान पकड़नेवाले जानवर के मुँह से हाय निकली। लड़की के होंठ काँप रहे थे, हुजूर शर्बत पी रहे थे। एक दो घूँट पीकर कहने लगे—"शहबाज़ इसकी पीठ पर एक और सिल रख दो।"

लड़की की आँखों से आँसू बह निकले, उसने अपना मुँह सुर्ख़ सूसी के दुपट्टे में छिपा लिया।

ऐसा मालूम होता था जैसे किसान की कमर दोहरी होकर टूट जायगी। हुज़ूर ने पूछा—"बोल अब भी एक़बाल करता है कि तू इस नाबालिग़ लड़की को भगाकर लाया है, या नहीं ?"

"नहीं" किसान ने रुक-रुककर कहा—"यह नाबालिग़ नहीं हैं, यह अपनी मर्ज़ी से आई है।"

"मजनूँ के साले, अब भी बराबर इन्कार किये जाता है। शहबाज, इसकी कमर पर एक और पत्थर रख दो।"

ख़च्चर घबराई हुई निगाहों से इस दृश्य को देख रही थी। राहियों के रंग उड़ गये थे। यह सब किसी रहस्यपूर्ण शक्ति से भयभीत मालूम होते थे। लड़की ने चीख़कर कहा—"इसे छोड़ दो, मैं तुम्हारे पाँव पड़ती हूँ इसे छोड़ दो, यह मर जायगा, इसका कोई क़सूर नहीं। मैंने ही इसे उकसाया था और यह मुझे भगाकर लाया है ! दरअसल मैं इसके साथ भागकर आई हूँ यानी मैं ही इसे भगाकर लाई हूँ।"

हुज़ूर ने मुसकराकर कहा—"देखो-देखो, कैसी वकीलों की-सी बातें करती है। तेरी सब शेखी निकाल दूँगा, ज़रा ठहर तो पहले मुझे इससे निबट लेने दे। क्यों रे उल्लू के पट्ठे !"

उल्लू के पट्ठे ने हाँपते हुये कहा—"मैंने किसी को नहीं भगाया।"

"इसे इसी तरह रहने दो।" हुज़ूर ने फ़ैसला सुनाया—"जब तक हम खाना वग़ैरह खायेंगे।"

यह कह कर उन्होंने मुँह फेर लिया और बनिये से बातें करने लगे—"मैं मौज़ा धलोरकोट से आ रहा हूँ। यह किसान इस ख़ूबसूरत लड़की को भगाकर ले लाया है। चार दिन से मारा-मारा इसकी तलाश में घूम रहा हूँ। आज यह दोनों

'प्रेमी-प्रेमिका' हाथ लगे हैं। कोहाले से पार जाने की कोशिश में आये थे। लेकिन मैं इन्हें कब छोड़नेवाला था। मैं उस रास्ते को सूँघ लेता हूँ जहाँ से मुजरिम एक बार निकल जाय। अब यह बदमाश हामी नहीं भरता। एक तो जुर्म किया है उस पर यह सीना-ज़ोरी।"

बनिया हाथ जोड़कर बोला—"हज़ूर हम तो हज़ूर की जान-माल को दुआ देते हैं। आपकी बरकत से इलाक़े में बिलकुल शान्ति है। चोरी चमारी डकैती का क़रीब-क़रीब ख़ात्मा हो गया है। यह किसान लोग बहुत निडर और बेशरम होते हैं। अब उसकी तरफ़ देखिये, दूसरे की बहू-बेटियों को ताकना कहाँ की शराफ़त है। और फिर इन्हें इस तरह भगाकर ले जाना। राम राम, हज़ूर ऐसे मुजरिमों को तो पूरी-पूरी सज़ा मिलनी चाहिए।"

हज़ूर ने उस युवती लड़की की तरफ़ ताकते हुए कहा—"क़ानून यही कहता है शाहजी, हम तो क़ानून के बन्दे हैं। अगर कोई किसी औरत को भगायेगा या किसी की बहू-बेटी पर हाथ डालेगा तो हम उसे ज़रूर अपराधी ठहराएँगे और उसे सज़ा देंगे। वह मुर्ग़ा आपने अभी हलाल करवाया कि नहीं? शहबाज़, जा, शाहजी से मुर्ग़ा लेकर हलाल कर।"

युवक किसान का चेहरा जमीन से लगता जा रहा था। उसके शरीर से पसीना बह रहा था लेकिन उसने सोचा, यह कोई रहस्यपूर्ण अज्ञात शक्ति थी जिसने युवक किसान को यूँ कष्ट उठाने पर मजबूर कर दिया और यह बनिया इस किसान की तकलीफ़ पर क्यों इतना प्रसन्न है, यह ख़बर क्यों इतनी घबराई हुई निगाहों से इस दृश्य को देखने लगी है। अकस्मात दो गुलदुमें एक झाड़ी से एक साथ उड़ीं और ख़ुशी से चहकें

भागती हुई ग़ायब हो गई। यह गुलदुमें, उसने ! सोचा, एक दूसरे को भगाकर ले जाती हैं, एक दूसरे के साथ भाग जाती हैं, एक दूसरे से प्रेम करती हैं लेकिन इनकी पीठ पर क्यों कोई पत्थर नहीं रखता और यहाँ क्यों हर उस मनुष्य के सीने पर पत्थर की सिल रख दी जाती है जिसके दिल में किसी के लिए प्रेम की ज्वाला प्रज्वलित हो उठे ? यह कैसा अंधेर है।

शहबाज़ ने मुर्ग़ा पकड़ लिया। मुर्ग़ा चिल्ला रहा था—'कुड़ कुड़ कुड़ कुड़ँ कुड़ँ' और उसे वह बूढ़ा किसान याद आ गया जो अपनी पोती को मुर्ग़े की बोली सुनाकर खुश कर रहा था और जिसका बेटा लाम पर गया हुआ था। युवक किसान के सब्र का बाँध अब टूटने को था, इसका गला रुँध गया और वह कराह रहा था—"मेरे अल्लाह, मेरे अल्लाह !"

'मेरे अल्लाह !' लेकिन सृष्टि की अज्ञात शक्ति ख़ामोश थी। किसान की यह सरल आशा कि यह अज्ञात शक्ति उसे बचायेगी, पगडण्डी की झूठी आकांक्षा के समान थी। क्योंकि वास्तव में आकाश कहीं नहीं है। इसकी हक़ीक़त भ्रमजाल की-सी है। जो चीज़ न हो उससे किसी को क्योंकर सहायता पहुँच सकती है ?

लड़की एक बार आवेश में आकर उठी और उसने पत्थर की सिलें अपने हाथों से परे दे मारीं। किसान पसीने में तर-बतर उठ खड़ा हुआ। लड़की उसके गले से चिमट गई, रो-रोकर कहने लगी—

"इक़बाल कर लो, ख़ुदा के लिये इक़बाल कर लो। मैं मर जाऊँगी, तुम भी मर जाओगे।" फिर वह हुज़ूर को सम्बोधन करके कहने लगी—"आप इसे कुछ न कहिये, मैं इक़बाल करती हूँ कि यह मुझे ज़बरदस्ती भगाकर लाया है, मैं इसके साथ

रहना पसन्द नहीं करती, मैं इससे नफ़रत करती हूँ। मैं अपने माँ-बाप के पास वापस जाने को तैयार हूँ। अब आप इसे कुछ न कहिये। मैं हर एक आदमी के सामने यह बयान देने को तैयार हूँ। ख़ुदा के लिये इसे छोड़ दीजिये।"

तीसरा पहर गुज़रता जा रहा था। पहाड़ों की छायाएँ निचली नदियों को अपने तिमिर में लपेट रही थीं। अब वह बहुत विकल था। थकन से तलवों, टख़नों, और घुटनों में हलका-हलका दर्द महसूस होने लगा था। जैसे उसकी टाँगें लड़की की टाँगें हों और एक-एक जोड़ अलग-अलग हो। बहुत देर तक रास्ते पर वह अकेला चलता रहा। उसके विचार निराशाप्रद और कल्पना उन्मादमय होती चली जा रही थीं। मनुष्य अभी मनुष्य नहीं है। यह युद्ध जो स्वतंत्रता सभ्यता और न्याय के लिये लड़ा जा रहा है शायद अन्तिम युद्ध न होगा। अन्तिम युद्ध शायद इस निर्मम भावना के विरुद्ध होगा जो मानव-प्रेम के स्रोत पर सिल रखकर जीवन के इस रस को सदा के लिये ख़ुश्क कर देना चाहती है। लेकिन यह युद्ध कब लड़ा जायगा ? कब—कब ? शायद तब तक वह जीता न रहेगा, ज़िन्दा न होगा। अपने जीवन में प्रतिद्रोह की इस निराश्रय भावना से वह कभी आलिंगित न हो सकेगा जिसकी प्यास से उसकी आत्मा का कण-कण काँप रहा है। व्यथा और क्षोभ से उसकी आँखों में आँसू भर आये और उसके क़दम भारी हो गये। रास्ते में उसे मज़दूरों के कई क़ाफ़ले मिले जो नमक के डले उठाये हुए अपने घर जा रहे थे। पहाड़ी देहातों में नमक इतना महँगा होता है कि ये लोग बनिये से ख़रीदकर इस्तेमाल करने की सामर्थ्य नहीं रखते। सामर्थ्य ?...सामर्थ्य ? आख़िर यह किस चीज़ की सामर्थ्य रखते हैं ? यह तो प्रेम करने की भी सामर्थ्य नहीं रखते...उसने सोचा कि इसे ऐसी

बातें सोचने का कोई अधिकार नहीं। वह जवान है, सुखी और अविवाहित है, मिडिल स्कूल का हेडमास्टर है। जीवन की सारी खुशियाँ उसे प्राप्त हैं। कल प्रातः उसे अपनी नौकरी पर हाज़िर हो जाना है; लड़कों को पढ़ाना है—सच बोलो, माँ बाप का सम्मान करो, हाकिम का हुक्म मानो, बड़े होकर किसी औरत को भगाओ मत, यह बनिये की दुकान है, मुर्गा बोलता है कुकड़ूँ कूँ—

एक खच्चरवाला अपना खच्चर लिये जा रहा था, खच्चर पर थड़ाप्लान कसा हुआ था लेकिन असबाब नहीं लदा हुआ था। शायद किसी जगह सामान पहुँचाकर वापस लौट रहा था। उसने खच्चरवाले से पूछा—

"कहाँ जा रहे हो ?"

"खरन के दर्रे तक।"

"क्या यह दर्रा मौज़ा धलीर के रास्ते पर है ?"

"हाँ, उससे पाँच छः मील परे।"

"मुझे इस खच्चर पर चढ़ाकर ले चलो, क्या लोगे ?"

"जो जी में आये दे देना, मैं तो खच्चर वापस ले जा रहा हूँ।"

"आठ आने।"

खच्चरवाले ने स्वीकृति में सिर हिला दिया और वह कूदकर खच्चर पर सवार हो गया। खच्चर ने बदन कसमसाया, कान हिलाये, नथने फटफटाये और देखा कि अब कोई चारा नहीं तो चल पड़ा। खच्चरवाला हृदय-भेदी आवाज़ में गाने लगा—

"किसी की खाक में मिलती जवानी देखते जाना !"

ख़रन के दर्रे पर वह ख़च्चरवाले से विदा हुआ और उससे रास्ता पूछकर आगे बढ़ा। चलते-चलते वह रास्ता भूल गया, या शायद उसने समझा वह रास्ता भूल गया है और किसी अजीब दुनिया में आ निकला है। यहाँ पगडण्डी एक तल्ले पर आकर ख़त्म हो जाती थी। इस जगह जंगली गुलाब खिले हुए थे और दो तरुण लड़कियाँ काँधों पर सोंटियाँ रखे एक सब्ज़ चट्टान पर बैठी लाजू गा रही थीं:—

लाजू आया, लाजू आया
भला केढ़े कम्मे लायावे लाजुआ
लाजू आया, लाजू आया
चन महाड़ा चढ़िया, भला बटियाँ दे ओले

उसे देखकर पहले तो वह खिलखिलाकर हँस पड़ीं, फिर शरमा गईं और उन्होंने गाना बन्दकर दिया। मुसाफ़िर एक लम्बी साँस लेकर उनके निकट बैठ गया और कहने लगा—"और गाओ, मुझे लाजू बहुत पसन्द है।" यह कहकर वह आहिस्ता आहिस्ता गुनगुनाने लगा।

चन महाड़ा चढ़िया, भला बटियाँ दे ओले
वे लाजूआ—
कीकर मलसाँ, भला जन्दरियाँ वे ओले
वे लाजूआ—
लाजू आया, लाजू आया।

लड़कियों ने हैरान होकर कहा—"तुम्हें तो 'लाजू' आता है?"

"हाँ, बल्कि मेरा तो नाम ही लाजू है।" उसने हँसकर झूठमूठ ही कह दिया—"और तुम्हारा नाम क्या है?"

एक ने कहा—"बानो"

दूसरी बोली—"बीरी"

उसने कहा—"अब तो लाजू गाओ।"

बानो और बीरी थोड़ी देर एक दूसरे से कान में बातें करती रहीं। उनके ढंग कहे देते थे कि वह किसी शरारत पर आमादा हैं। फिर उन्होंने शोख़ सुरों में गाना शुरू किया और वह अपने हाथों से ताल देने लगा—

लाजू आया, लाजू आया

भला केढ़े कम्मे लाया वे लाजुआ

लाजू आया, लाजू आया

भला जोड़े गंडन लाया वे लाजुआ

गाते-गाते खिलखिलाकर वह हँस पड़ीं और मुसाफ़िर भी उनके इस सरल विनोद से बहुत ख़ुश हुआ और उनकी हँसी में शामिल हो गया। कहने लगा—"अगर लाजू को बानो और बीरी के जूते गाँठने के लिये कहा जाय तो उसे कभी इन्कार न न होगा।" प्रशंसा के इस वाक्य के बाद उसने बानो और बीरी के कपोलों पर वह जंगली गुलाब के फूल खिलते देखे जो उसके क़रीब बेलों में खिले थे।

कुछ अरसे तक वह उनके गीत सुनता रहा, और उनके गीतों में शरीक होता रहा। फिर जब सूर्य पश्चिमी पर्वतशृंखला पर झुक गया तो उसने चलने की ठानी।

बानो ने धीमे लहजे में कहा—"अच्छा आज यहीं रह जाओ। हम तुम्हें अपने घर में जगह देंगे। तुम्हें सोने के लिये एक खाट चाहिये और एक कम्बल, ठीक है न ?"

बानो की आवाज़ में एक हलका-सा प्रकम्पन था और उसका चेहरा असाधारण तौर पर लाल हो गया था।

बीरी ने शोख़ निगाहों से मुसाफ़िर की ओर देखा।

और मुसाफ़िर ने इन पहाड़ी सुन्दरियों की ओर देखते हुए अपने दिल में कहा—नहीं यह बात ठीक नहीं है, मैं इन

'हालाँकि मुझे भी यह महसूस होता है कि तुम्हें बचपन से जानता हूँ। मैं तुम्हारे साथ छुटपन से ही खेलता और मुहब्बत करता चला आया हूँ, मैं शायद तुम्हारे बचपन का साथी हूँ, तुम्हारे लापरवा और अचिन्त भाई का मित्र, तुम्हारे गीतों का लाजू। मैंने नदी के नीले पानी में तुम्हारे साथ तैरते हुए तुम्हारे सुनहरी बालों की चोटी को पकड़कर यूँ घसीटा है कि तुम चिल्ला उठी हो। तुम्हारे हाथों में अपना हाथ दिये मैं अनेक बार बटिंग के वृक्ष के नीचे नाचा हूँ और आमलोक तोड़कर खाये हैं। तिरनारी के फूलों के हार बनाकर एक दूसरे के गले में पहनाये हैं। कई-कई बार जब चन्द्रमा अखरोटों के झुण्डों के पीछे से उदय हुआ है, मैंने चाँदनी और अँधियारे की काँपती हुई शतरंज पर तुम्हारी प्रतीक्षा की है। तुम्हारी लचकती हुई कमर में हाथ डालकर तुम्हारे कसमसाते हुए शरीर को अपने सीने से लगाया है। मैं इन फूलों की पंखुड़ियों की तरह शोख़ और कोमल होंठों का मज़ा जानता हूँ। तुम्हारी साँस की मृदुलता और स्याह आँखों में चमकते हुए मोतियों की आभा से परिचित हूँ। लेकिन मैं इन उलझनों में पड़ना नहीं चाहता। मैं अपने दिल में उस शमा को सुरक्षित कर लेना चाहता हूँ जो शीशे की चार-दीवारी के बाहर फूल की तरह सुन्दर परवानों की तरफ़ तकती है और जलती और जगमगाती रह जाती है—मुसाफ़िर ने निगाह फेरकर नीचे गाँव की तरफ़ देखा। घाटी के आधे दायरे के नीचे गाँव एक नीरव नदी के किनारे सोया पड़ा था। खेतों में मकई के पौदे चुपचाप खड़े थे। किनारों पर पीली-पीली घास किसान के हाथ और दरांती के संगीत की प्रतीक्षक मालूम होती थी। कच्चे घरों की छत पर ऊदे रंग की बजरी ढलती हुई धूप में चमक रही थी। इन छतों के किनारों पर कहीं-कहीं पीली, सब्ज़ और सुर्ख़ अल्लें रखी थीं या गोल-गोल सुर्ख़ मिर्चें।

मुसाफ़िर ने फिर निगाह फेरकर बानो और बीरी की ओर देखा और पूछा—"मौज़ा धलीर यहाँ से कितनी दूर है ?"

बानों ने उदास लहजे में कहा—"कोई तीन चार मील।"

बीरी बोली—"दिन ढलता जा रहा है।"

मुसाफ़िर उठ खड़ा हुआ, बोला—"अभी बहुत समय है, अगले गाँव पहुँच जाऊँगा।"

मुसाफ़िर पगडण्डी पर चलने लगा। यह पगडण्डी चीड़ और भाऊ के जंगलों में छिपती हुई कभी नीचे कभी ऊपर आगे जा रही थी। पहाड़ के आख़िरी मोड़ पर यह नीले आकाश से मिल जाती थी। अकस्मात् उसे अनुभव हुआ कि पगडण्डी की अभिलाषा एक विफल प्रयास न था। उसे मालूम हुआ कि यह पगडण्डी पहाड़ के कोने से मुड़ नहीं जाती बल्कि सीधी नीले आकाश में से गुज़रती हुई आगे जा रही है। मुसाफ़िर का दिल किसी अलक्ष्य प्रसन्नता से परिपूर्ण हो गया। उसने सोचा क्यों न वह इसी रास्ते से गुज़रता हुआ नीले आकाश की पगडण्डी पर चलता जाये, सौंदर्य के किसी नये संसार में। उसे विचार आया कि पहाड़ का वह कोना जहाँ यह पगडण्डी ज़ाहिरी तौर से ख़त्म हो जाती है एक अपरिमित नीले भील का किनारा है और वह सोचने लगा कि वह अपने सशक्त बाज़ुओं से उसे अवश्य पार करेगा। वह इसमें से तैरता हुआ और नीले पानी को उछालता हुआ आगे बढ़ता चला जायगा। या शायद यह नीला आकाश ही हो तब भी वह इस सुन्दर आकाश की नीलिमा में वायु का एक हलका-सा झोंका बनकर उड़ जायगा और चारों ओर फैलता जायगा और उसके दिल की ख़ुशी बढ़ती जायगी। यहाँ तक कि वह नीले आकाश

की आत्मा में घुस जायगा। मुसाफ़िर को इस विचित्र अनुभव की ख़ुशी में ऐसा मालूम हुआ कि उसका सारा शरीर हलका सूक्ष्म हो गया है और वह तेज़ी से पगडण्डी पर छलाँगें लगाता हुआ भागने लगा।

फिर अचानक वह ठिठक गया और पीछे मुड़-कर देखने लगा।

सूर्य चोटी पर अस्त हो रहा था। जंगली गुलाब की बेलों का सहारा लिये दो सोने की मूरतें उसकी ओर तक रही थीं। झुटपुटे की निस्तब्धता में उसके निकट से गुजरती हुई हवा उदास मालूम होती थी, उदास और मीठी, जैसे उसने जंगली फूलों की डण्डियों का सारा शहद बाहर खींच लिया हो, सारी वायु में जंगली गुलाब की सुगन्ध और उषा की रंगीनी घुलती हुई मालूम देती थी। वह कुछ अरसे एक जगह खड़ा हुआ उनकी ओर तकता रहा, फिर उसने बाज़ू घुमाकर उन्हें बिदा कही और रास्ते पर मुड़ गया।

लेकिन अब उसके मन की असाधारण प्रसन्नता में एक अजीब उदासी आ गई थी। उसके क़दम भारी हो गये और वह चलतें-चलते हर्ष और विषाद की इन दोनों सीमाओं के बीच खड़ा होकर सोचने लगा कि न तो औरतें ही सुन्दर होती हैं और न ही गुलाब के फूल; बल्कि समय के ऐसे ही कुछ एक क्षण जो जीवन की तमाम निशा में प्रकाशमान तारों की तरह झिलमिलाते रहते हैं।

आता है याद मुझको

सन् १९२० ई० के मौसमे बहार में मैंने अपनी उम्र के सातवें साल में क़दम रक्खा। उन दिनों हम लोग अंगपुर की घाटी में रहते थे जिसका शुमार अब भी कश्मीर की हसीन तरीन घाटियों में होता है। लेकिन मुझे उन दिनों उसमें कोई ख़ास बात नज़र न आती थी। इसके बहुत से कारण हो सकते हैं। हम लोग यहाँ नये-नये आये थे। मैं और मेरा बड़ा भाई राम और माँजी और पिता जी और कामिनी मौसी, जिसकी उम्र साठ साल से भी ज्यादा थी! फिर यहाँ स्कूल में—लड़के मुझे एक अमीर आदमी का बेटा जान कर नफ़रत के क़ाबिल समझते थे और मौक़ा पाकर पीट दिया करते थे। इसके अलावा मैं स्कूल में शायद सबसे कुन्द जेहन था इसलिये भी दोनों उस्ताद, बड़े मास्टर और छोटे मास्टर दोनों मुझसे नाख़ुश

थे। कोई दोस्त ग़मख्वार न था, जो सात बरस के लड़के से हमदर्दी करता। माँ जी पिता जी की दिलदारी में लगी रहतीं, कामिनी मौसी हर वक़्त मेरा गला टटोलती रहतीं—'आज फिर तूने खट्टे आलूचे खाये हैं, ठहर तो सही।'......और फिर वे मेरा गला दबोच कर, मुझे अपनी रानों पर लिटाकर, मेरा मुँह खोल कर उसमें जोशाँदा टपकातीं, जो इस घाटी में उगे हुए बनफ़शे, सब्ज़ चिरायते, सुम्बलो की जड़ों और न जाने किस अलाबला से तैयार किया जाता था। ओह! कितना कड़ुआ बिकठा और बदज़ायक़ा होता था वह जोशाँदा......और जब कामिनी मौसी मेरी नाक पकड़ कर मुझे ज़मीन पर गिरा देतीं या अपनी गोद में ढकेल देतीं और मैं 'ओ ओ' करते हुए जोशाँदे को गले से न उतारने की कोशिश करता और इसी नाकाम कोशिश में कामिनी मौसी का अंगूठा चबाने में कामयाब हो जाता तो जोशाँदा पीने के बावजूद चपतियाया जाता। इस दुनिया में इन्साफ़ कहाँ है? कोई एक ग़रीब सात बरस के बच्चे की नहीं सुनता......!

इन्हीं बातों से चिढ़कर एक दिन मैंने सोचा कि मैं अब स्कूल न जाऊँगा, बला से, जो कुछ होगा, देखा जायगा। आख़िर ऐसा भी क्या, हमारा भी इस दुनिया में रहने और अपनी सी कर गुज़रने का हक़ है। और यह सोचकर मैंने जल्दी से सिलेट, कापी और किताब को बस्ते में बन्द किया और तख़्ती बग़ल में दाब कर स्कूल की राह ली। थोड़ी दूर चलकर जब घर टेंगियों के झुण्ड में ओझल हो गया तो मैंने स्कूल का रास्ता छोड़कर दूसरी पगडंडी पर चलना शुरू किया जो घाटी से नीचे उतर कर नदी के किनारे-किनारे धान के खेतों तक जाती थी, जहाँ पनचक्कियाँ थीं, चश्मे थे, सब्ज़ा था, जहाँ दिन भर चरवाहे और चरवाहियाँ रेवड़ चराते थे।

स्कूल से और घर से भागने का यह पहला मौक़ा था इस-लिये कुछ .खुश-.खुश, कुछ सहमा-सहमा, कुछ आज़ाद सा, कुछ उदास सा चला जा रहा था अपनी धुन में और सोच रहा था कि इस बस्ते को कहाँ रक्खूँ, इसे लिये-लिये फिरना तो बड़ी हिमाक़त होगी। कोई देख लेगा तो पकड़ कर सीधा स्कूल ले जायगा या घर। अब क्या हो, इस बस्ते को कहाँ छिपाऊँ। जब घाटी के निचले भाग की तरफ़ पहुँच गया तो मैंने अपने बस्ते को और तख्ती को दाख़ के एक बड़े झाड़ में चुपके से रख दिया। यहाँ लम्बी-लम्बी घास उगी हुई थी और ज़मीन पर जो बेलें फैली थीं उन पर नीले नीले और हल्के सुर्ख़, रंग के फूल आये थे जो चौड़े-चौड़े पत्तों के बीच ग्रामोफ़ोन के उस भोंपू की तरह नज़र आते थे जिसके सामने सफ़ेद रंग का एक कुत्ता बैठा होता है . ...एकाएक मुझे एक .खूबसूरत गिलहरी नज़र आई और मैं उसे पकड़ने की कोशिश में दाख़ की बेल पर जो मन्नू के पेड़ पर बल खाती चली गई थी, ऊपर चढ़ता चला गया। फिर गिलहरी मुझे चकमा देकर कहीं उन चौड़े-चौड़े पत्तों में गुम होगई और मैं दाख़ के उन गुच्छों को टटोलने लगा, जिनके दाने अभी पन्ना की तरह सब्ज़ थे और उतने ही सख्त। दाख़ के एक दो दाने मैंने तोड़ कर खाये। बड़े कसैले और कड़ुवे थे, और बीज, जो ज़बान पर आकर टूट गया तो कुनेन की गोली की तरह कड़ुवा मालूम हुआ। कड़ुवा और गले को घोंटता हुआ। मैं नाउम्मीद हो बेल से नीचे उतर आया। क़मीज़ कोहनी के पास फट गई थी और पाजामा भी घुटनों की रगड़ से दो बड़े-बड़े भूरे दाग़ लिये था। ख़ैर, नीचे उतर आया, जमाही ली। उफ़, किस क़दर उदास है यह दुनिया! उन दिनों मैं कवि न था, कहानी लेखक न था, पढ़ा लिखा न था। उन दिनों ऊषा में खूबसूरती थी न हवा में लताफ़त, न घास में सोंधी सी .खुशबू।

फूल थे तोड़ने के लिये, गिलहरियाँ पकड़ने के लिये, तितलियाँ पीछे भागने के लिये, औरतें जोशाँदा पिलाने और नाक कान मरोड़ने के लिये और दाँत अँगूठा चबाने के लिये, मर्द चपतियाने और कान पकड़कर स्कूल ले जाने के लिये। इसलिये मैंने ज़ोर से एक जमाही ली और सोचा कि अब क्या करूँ, अब न घर जा सकता हूँ न स्कूल। मैंने सोचा, क्यों न इन पहाड़ों से परे कहीं दूर चला जाऊँ जहाँ अच्छे लोग बसते हैं, जहाँ शहज़ादे और शहज़ादियाँ रहती हैं जहाँ जादूगर महल बनाते हैं और परीज़ादे हंस के परों पर नीली झीलें पार करते हैं। हाँ बस यह ठीक है!

यह सोचकर मैं दारू के झुण्ड से निकला और घाटी की ढलान की तरफ़ बढ़ा। ग्रामोफ़ोन के भोंपुओं को अपने पाँव से कुचलता गया, जूता उतार कर मैंने अपने बस्ते के क़रीब रख दिया क्योंकि अब नर्म-नर्म घास पर नंगे पाँव चलने में लुत्फ़ हासिल हो रहा था। मैंने ज़ोर-ज़ोर से सीटी बजाना शुरू की। कामिनी मौसी मुझे उस वक़्त सीटी बजाते देख पातीं तो क्या कहतीं.....मैंने इधर-उधर देखा, लेकिन कामिनी मौसी कहीं नज़र न आईं......ओह मुझे क्या परवाह है......मैंने इतमीनान से फिर सीटी बजाना शुरू की। एकाएक क़रीब से किसी ने मुझे ज़ोर से डाँटा और मैं डर से उछल कर भागा। फिर घूम कर देखा तो मालूम हुआ कि यह कामिनी मौसी न थीं, एक शरीर माहीमार था जो अब हवा में चीख़ता हुआ, शोख़ी से पर खोलता-बन्द करता हवा में डुबकियाँ लगाता हुआ उड़ा चला जा रहा था। कमबख़्त ने यों ही मुझे डरा दिया था। मैंने ज़मीन से कंकड़ उठाकर उसे मारना शुरू किया, लेकिन एक कंकड़ भी उसे न लगा और वह ठट्ठे लगाता हुआ, मज़े से उड़ता हुआ नदी की तरफ़ चला गया।

सामने एक ख़ूबसूरत चकोर, मोटा-मोटा, चितकबरा चकोर मज़े से टहलता हुआ जा रहा है। ठीक सामने, बिलकुल रास्ते में, मैं उसे देखकर रुक गया और एक तने के ओट में खड़ा होकर सोचने लगा कि इसे किस तरह पकड़ा जाय। फिर सारे दाँव सोच कर मैं आगे बढ़ा। धीरे-धीरे, घुटनों के बल चलने लगा ताकि आहट न हो। हर क्षण मुझे उसके क़रीब ला रहा था। एकाएक चकोर ने गर्दन मोड़ कर मुझे देख लिया और दिल धक-धक करने लगा। उसने अपने परों को एक हलकी सी जुम्बिश दी और मैंने नाउम्मीद होकर सोचा कि अब यह उड़ा......लेकिन मेरी ख़ुशी की कोई हद न रही जब वह मुझे देख कर भी बदस्तूर अपनी चाल चलता रहा। मैंने सोचा, ज़रूर यह चकोर किसी का पालतू है और छूट गया है, या फिर अभी बच्चा है जो उड़ नहीं सकता, मुमकिन है कि ज़ख्मी हो, किसी लड़के ने गोफिया मारकर इसका सर तोड़ दिया हो ...मैंने अपनी चाल तेज़ कर दी। उधर चकोर ने भी......फिर मैंने घुटनों के बल पर चलना छोड़ दिया और सीधा उठकर उसके पीछे भागा और ठीक उस समय जब मैं उसे दबोचने ही को था कि चकोर ने अपने पर फैलाये और इतमीनान से उड़ता हुआ हवा में चक्कर लगाने लगा और मैं घबराहट में एक लहेगवाड़े के दरख़्त से टकरा गया और नीला धारी की झाड़ी में जा गिरा और वहाँ से लुढ़क कर सब्ज़े पर जो फिसला हूँ तो बेर की एक झाड़ी के नीचे जाकर ही रुका ...

यहाँ पर एक लड़का चाक़ू की मदद से ज़मीन खोद रहा था, मेरी बिगड़ी हालत देख कर उठ खड़ा हुआ और अपनी कमर पर दोनों हाथ टेक कर ठट्ठे लगाने लगा। मैं जल्दी से कपड़े झाड़ कर उठा और हालाँकि मेरे पाँव और बाज़ काँटों

से घायल हो गये थे। फिर भी मैं अपनी मुट्ठियाँ बाँध कर उसकी तरफ़ बढ़ा और उससे पूछा—"क्यों हँसते हो जी ?"

"ही ही ही।" उसने हँसते हुए कहा—"मालूम होता है तुम स्कूल से भागे हो।"

"हाँ।" मैंने मुट्ठियाँ कसकर जवाब दिया—"क्या तुम्हारे बाप का स्कूल है ?"

"ही ही ही।" वह और भी ज़ोर से हँसने लगा और कहने लगा—"मेरे बाप का स्कूल होता तो तुम वहाँ से भाग सकते ? मेरे बाप के पास पचास घोड़े हैं और आज तक हमारा एक भी घोड़ा नहीं भागा।"

"मैं घोड़ा नहीं हूँ।" मैंने ग़ुस्से में कहा।

"हो हो हो।" वह चीख़ा, फिर उसने आगे बढ़कर एकदम मुझे बाज़ू से पकड़ लिया और अपने क़रीब खींच कर बोला—"जानते हो, मैं चाक़ू से ज़मीन क्यों खोद रहा हूँ ?"

"कोई ख़ज़ाना होगा।" मैंने ऐसी बेपरवाही के अन्दाज़ में कहा, जिसमें ज़रा सी दिलचस्पी भी पाई जाती थी। उससे ख़फ़ा होने के बावजूद मैं उस खोये हुए ख़ज़ाने में दिलचस्पी लेने से अपने आपको कैसे रोक सकता था।

'ख़ज़ाना नहीं है।" उसने सलाकुन अन्दाज़ में हाथ झटक कर कहा।

"तो फिर जादू की तख़्ती होगी।" मैंने कहा।

"नहीं, जादू की तख़्ती नहीं है।"

"तो फिर क्या है ?"

"ख़ूनी बूटी ?'

"ख़ूनी बूटी ?"

"हाँ ख़ूनी बूटी, कभी प्याज़ खाई है तुमने ? बस ख़ूनी बूटी की शक्ल भी बिलकुल प्याज़ जैसी होती है। लेकिन उसमें ख़ून भरा होता है।"

"ख़ून ?......किसका ख़ून ? किसी जिन का ख़ून है इसमें ?"

"नहीं, किसी जिन-बिन का ख़ून नहीं, इसमें आदमी का ख़ून है !"

उसने जवाब दिया और मेरे सारे बदन में फ़ुरफ़ुरी आगई।

"आदमी के ख़ून को क्या करते हैं ?" मैंने उससे पूछा।

"पीते हैं।"

'पीते हैं ?" मैंने डरकर उससे पूछा।

"हाँ, बड़े मज़े का होता है। और मेरा बाप कहता है, जो लड़का उस ख़ूनी बूटी का ख़ून पी ले वह हवा में उड़ सकता है, ऊँचा..... उड़नखटोले की ज़रूरत नहीं रहती।"

"अरे वाह !" मैंने ख़ुशी से ताली बजाई और उसका चाक़ू लेकर कहा—"लाओ मुझे यह ज़मीन खोदने दो !"

'तुम परे हट जाओ।" उसने मुझे ग़ुस्से से ढकेल कर कहा—"यह बूटी मेरी है, इसका ख़ून मैं पियूँगा।"

"नहीं, मैं पियूँगा।" मैंने कहा—"और नहीं तो मैं तुम्हें यह जगह नहीं खोदने दूँगा।"

वह बोला—"अच्छा......तो हम बारी-बारी ज़मीन खोदेंगे। जब जड़ी निकल आयगी तो उसका आधा ख़ून तुम

पी लेना, आधा मैं पी लूँगा, और फिर हम दोनों हवा में उड़ जायँगे।"

मैंने ख़ुश होकर कहा—"और मास्टर के सर पर पेशाब करेंगे .... और दूर बहुत दूर परियों के देश में चलेंगे। कामिनी मौसी कहती थीं..... ।"

वह मेरी तरफ़ ध्यान से देखकर बोला—"तो तुम बंगले में रहते हो ?" उसके लहजे में हिक़ारत थी।

मैंने शर्मिन्दा होकर कहा—"हाँ।" और फिर, "तुम कहाँ रहते हो ?"

वह बोला— 'मैं उस ऊँचे पहाड़ पर रहता हूँ। हमारा घर मिट्टी का है, दो मंज़िला है। तुम्हारा बंगला तो सिर्फ़ एक मंज़िल का है। मेरे बाप के पास पचास घोड़े हैं। मेरा नाम अमजद है......।"

ख़ूनी बूटी की ख़ातिर मैं उससे लड़ाई मोल न लेना चाहता था इसलिये मैंने उस शेख़ी ख़ोरे की बातों का कोई जवाब न दिया और चुप हो रहा। अमजद और मैं बारी-बारी चाक़ू से ज़मीन खोदते रहे। घोंघे, छोटी-छोटी सीपियाँ, सफ़ेद, ज़र्द और हरे रंग के पत्थर निकाल कर उनसे अपनी जेब भरते रहे। आख़िर एक लम्बी जड़ के नीचे वह प्याज़ की गुठली सी नज़र आई और मैंने चीख़ कर कहा :—"ख़ूनी बूटी !"

"हटो, मुझे देखने दो। कहाँ है ?" अमजद चिल्लाया और उसने फिर मुझे परे ढकेल दिया—"इधर लाओ चाक़ू तुम कहीं उसे ज़ख़्मी कर दोगे तो सारा ख़ून गुठली से निकल कर मिट्टी में घुल जायगा। परे हटो।" अब वह बड़ी सावधानी से उस गुठली के ईर्द गिर्द की ज़मीन खोद रहा था।

आखिर वह भूरे रंग की गुठली, जिसके चारों तरफ़ मिट्टी लगीहुई थी, सही-सलामत बाहर निकाल ली गई। अब वह अमजद की उंगलियों में लटक रही थी, उड़नखटोले की तरह ! अमजद आहिस्ता-आहिस्ता उसकी खाल पर से मिट्टी उतारने लगा। मैंने अमजद से कहा—"इसे अच्छी तरह थामे रहो, नहीं तो उड़ जायगी।"

"तुम्हें कैसे मालूम ?" उसने मुझसे पूछा।

"मैं जानता हूँ।" मैंने कहा।

"अमजद जब गुठली साफ़ कर चुका तो बोला—"अब इसका आधा हिस्सा कैसे होगा ?"

"मैं बताऊँ। इसके बीच में चाक़ू से एक छेद कर दो और फिर उस छेद को अंगूठे से दबा दो और बूँद-बूँद करके मुँह में टपकाते जाओ। मेरे मुँह में और अपने मुँह में। बारी-बारी। लो अब जल्दी करो। मुझे उड़कर परियों के देश जाना है।" मैंने कहा।

अमजद ने चाक़ू से गुठली में छेद दिया और वहाँ अँगूठा रख दिया। फिर अपना मुँह खोलकर उसने अँगूठे के दबाव को ज़रा सा ढीला कर दिया और आदमी का ख़ून अपने मुँह में टपकाने लगा।

वह पहली बूँद !...... मैं उस सुर्ख़ ख़ूनी बूँद को देखने के लिये इतना बेताब था कि मेरा मुँह भी आपसे आप खुल गया, जैसे वह बूँद मेरे ही मुँह में टपकने को थी।

लेकिन वह बूँद न टपकी।

अमजद ने अँगूठे को छेद से ज़रा परे सरका दिया।

और परे सरकाया।

और परे सरकाया।

बिलकुल हटा दिया।

अरे !

गुठली से ख़ून की बूँद भी न बही

फिर जल्दी से गुठली को चीरा गया। उसके टुकड़े-टुकड़े किये गये लेकिन ख़ून का कहीं नाम निशान न था। बस प्याज़ की तरह तह पर तह चढ़े छिलके थे। उसमें और कुछ न था। ज़रा सा लेकर चक्खा, कड़ुवा ज़हर था।

अमजद ने उसे लेकर नीचे फेंक दिया और फिर बोला—"यह गुठली कच्ची है। अभी इसमें ख़ून पैदा ही नहीं हुआ......!"

× × ×

अमजद और मैं नदी के किनारे-किनारे बहुत देर तक तैरते रहे, और जब तैरते-तैरते थक जाते तो पानी से निकल कर रेत पर लेट जाते और सूरज की गर्म-गर्म किरनों और रेत की तपती हुई सतह से अपने जिस्म को गर्माते और किसी चौड़े पत्थर पर कानों को टेककर उनमें से पानी निकालने की कोशिश करते। यहाँ बहुत से लड़के और लड़कियाँ जमा थे, छोटे-छोटे चरवाहे और चरवाहियाँ, जो उन बड़ी-बड़ी भैंसों, गायों, घोड़ों और गधों के गल्लों की इस होशियारी से देखभाल करते थे कि मुझे तो बार-बार हैरत होती थी कि किस तरह ये भारी-भारी शरीर वाले जानवर, जो क़रीब ही हरियाली पर चर रहे थे इन ज़रा-ज़रा से चरवाहों के रोब में आकर इनके हर इशारे को हुक्म समझ कर बेचूँ-चरा किये उसकी तामील करते थे।

मैं और अमजद रेत पर लेटे थे और अमजद के पास ही पारो लेटी थी और पारो के क़रीब दो-तीन और लड़के और लड़कियाँ .....और पारो के भूरे-भूरे बाल सूरज की किरनों में गहरे सुनहरे हो गये थे, और पारो मुझे बड़ी अच्छी लगी थी और नदी में तैरते वक़्त भी हम दोनों एक दूसरे के क़रीब तैरते रहे थे और एक दूसरे पर पानी उछालते रहे थे। तैरते-तैरते हम दोनों पत्थर की उन सिलों पर बैठ जाते जो नदी के बड़े बहाव को हमारे तैरने की जगह से अलग करती थीं। वहाँ बैठे-बैठे मैंने पारो से कहा—"मैं नदी के बड़े बहाव में भी तैर सकता हूँ।"

"झूट।" वह बोली।

"मैं हवा में भी उड़ सकता हूँ।" मैंने कहा।

"उड़ कर दिखाओ।" वह बोली।

मैंने कहा—"और मैं परियों के देश जा रहा हूँ आज मुझे कामिनी मौसी ने बताया है कि......... ।"

पारो अपना निचला होंठ एक अजीब अदा से सिकोड़ कर बोली—"तो तुम बंगले में रहते हो न।"

"हाँ, और मेरे बंगले में पीले गुलाब की एक बहुत बड़ी बेल है। तुमने पीले गुलाब देखे हैं?"

"नहीं।" पारो बोली।

"अच्छा तो मैं तुम्हें बहुत से पीले गुलाब दूँगा, और एक हार बनाऊँगा तुम्हारे लिये।"

"पारो अपनी परेशान लटों से पानी निचोड़ते हुए बोली—"अच्छा तो हम तुमसे ब्याह करेंगे, अमजद से नहीं करेंगे।"

"अमजद?" मैंने कहा—"अमजद तो बुद्धू है। वह तो स्कूल भी नहीं जाता...... ।"

इतने में अमजद तैरता हुआ हमारे क़रीब आया और उसने हम दोनों को टाँगों से पकड़ कर पानी में घसीट लिया। हम फिर तैरने लगे और पानी की कुल्लियाँ एक दूसरे पर फेंकने लगे। हथेलियों में पानी भरकर उसे इस तरह पिचकाते कि पानी एक बुलन्द दायरे की सूरत में हवा में बिखर जाता। कभी-कभी हम धब-धब टाँगें हिला कर नक़ली झरना गिराते और पानी की सतह को बिलोई हुई झाग में बदल देते।

अब हम सब रेत पर लेटे धूप का लुत्फ़ ले रहे थे। पारो और मैं बिलकुल क़रीब लेटे होते लेकिन कमबख़्त अमजद बीच में आकर पारो के पास औंधा पड़ गया था। उसकी ठोड़ी रेत में घुसी हुई थी। काले और खुरदुरे बालों में कीचड़ और रेत थी और कान की लवों के क़रीब रेत में पानी के दो छोटे-छोटे गड्ढे बन गये थे। वह अधखुली आँखों से कभी मुझे कभी पारो को देख लेता।

मैंने कहा—'पारो और मैं ब्याह कर रहे हैं।"

पारो खिल-खिला कर हँसी।

अमजद ने ग़ुस्से से पारो की तरफ़ देखा, फिर मेरी तरफ़। मैंने कहा—"और पारो मेरे साथ परियों के देश जा रही है।"

अमजद की निगाहों में जैसे ख़ूनी बूटी का लहू उछलने लगा। उसने ग़ुस्सा-भरी निगाहों से मेरी तरफ़ देखा। उसने अपनी उंगलियाँ रेत में गाड़ दीं और अपनी मुट्ठियों में रेत भींच कर बोला—"यह सच है पारो?"

पारो ने अपनी सुनहरी लट, जो उसके गालों पर काँप रही थी, अपने दाँतों के बीच रख ली और चुपचाप हँसने लगी।

अमजद ने अपनी रेत से भरी हुई मुट्ठियाँ ऊपर उठाईं और वह उसी रेत को मेरी आँखों में झोंकने को था कि नदी किनारे किसी ने आवाज़ दी—"हो जरयो रुटी खा गेनो !"

एकाएक सब पर भूक सवार हो गई। अमजद की मुट्ठियाँ रेत से खाली हो गईं......और हम सब लोग नदी के किनारे-किनारे तनू के पेड़ के नीचे चले आये। मकई की रोटी थी और गंभार का साग। हर घर से गंभार का सालन आया था। दो एक घरों से यह सालन भी न आया था। सिर्फ़ मकई की रोटी थी और पिसी हुई सुर्ख़ मिर्च और नमक, पारो के घर से प्याज़ की तीन गाँठें भी आई थीं। पारो ने उन्हें जल्दी से पत्थर की एक बड़ी सी सिल पर रखकर पीस डाला और नमक, मिर्च और वहीं से जंगली पुदीना तोड़ कर चटनी बना डाली। सबसे पहले उसने मकई की रोटी पर चटनी रखकर मुझे खाने को दी, फिर अमजद को बाद में ख़ुद ली। अमजद अपने होंठ चबाने लगा। मुझे रोटी खाने में बड़ा मज़ा आया। पारो के कुन्दनी चेहरे पर उस वक़्त एक अजीब मासूम शरीर, शोख़ और भोली सी मुस्कराहट थी। वह चेहरा, वह मुस्कराहट मुझे अब भी याद है........

खाने के बाद हम लोग नदी से पानी पी रहे थे कि अमजद ने मुझे धक्का देकर पानी में गिरा दिया। पारो चीख़ी, मैंने ग़ुस्से में आकर अमजद पर पानी फेंका और फिर नदी से निकल कर उससे हाथापाई करने लगा।

अमजद बोला—"बस अपने बंगले को चले जाओ, सीधे, पारो से मैं ब्याह कर रहा हूँ।"

मैंने कहा—"नहीं, पारो से मैं ब्याह करूँगा। तू तो मुसलमान है। पारो से ब्याह कैसे करेगा।"

वह बोला—"इसमें क्या है ? और तुम तो पंजाब के रहने वाले हो। तुम पंजाबी हो। हम कश्मीरी हैं। और फिर तुम्हारा बाप बंगले में रहता है।"

बंगले की बात सुनकर सारे चरवाहे हँसने लगे।

"और फिर तू स्कूल जाता है हर रोज़—स्कूल।" फिर अमजद दूसरे चरवाहे और चरवाहियों से मुख़ातिब होकर कहने लगा—"देखा तुमने ? यह लड़का रोज़ स्कूल जाता है।"

स्कूल पर फिर एक ज़ोर का ठट्ठा गूँजा और मैंने ताव में आकर अमजद को एक घूँसा लगा दिया। अमजद ने मुझे... जल्द ही हम एक दूसरे पर पिल पड़े, गुत्थमगुत्था हो गये और लड़के-लड़कियों ने हमें एक घेरे में ले लिया और शोर मचा-मचाकर तारीफ़ करने लगे। थोड़ी देर के बाद मेरा दम फूलने लगा और अमजद ने मुझे ज़ोर से ज़मीन पर पटक दिया, अड्डी घोड़ा देकर, और मेरी छाती पर चढ़ बैठा। अब मैं बाज़ी हार चुका था और रेत मेरी आँखों में थी और कानों में और गले में। फिर भी जब तक मैंने अच्छी तरह दाँत किटाकिटा कर उसके बाज़ू को न काट खाया अमजद ने मुझे छोड़ा नहीं।

एक लड़के ने कहा—"यह ग़लत बात है। इसने अमजद के बाज़ू को काट खाया है।"

दूसरा बोला—"हाँ, यह कुश्ती के दाँव में दाख़िल नहीं।"

तीसरा बोला—"ठीक है, ठीक है। इसे सज़ा मिलनी चाहिये। यह ठीक कहाँ लड़ा।"

पारो बोली—"हाँ, इस लड़के के कपड़े यहाँ रख लो इसने अमजद का बाज़ू काट खाया है। यह लड़का है या बावला कुत्ता।"

फिर सब चरवाहे "बावला कुत्ता, बावला कुत्ता" कह कर मुझे चिढ़ाने लगे। मेरी आँखें, जो पहले ही रेत से जल रही थीं, अब ग़म व .गुस्से से भर आईं और मैं दहाड़ें मार कर रोता हुआ नंग-धड़ंग अपने बंगले को रवाना हुआ। और दूर तक चरवाहे और चरवाहियाँ नाच-नाच कर और चीख़-चीख़ कर मुझ पर आवाज़ें कसते रहे—"बंगले का बावला कुत्ता, बंगले का बावला कुत्ता।"

कपड़े खोये, जूता खोया, बस्ता खोया और हर जगह अपनी ठुकाई हुई, नदी पर...घर पर...स्कूल में.. ...लेकिन मुझे किसी पर .गुस्सा न था। न अमजद पर......न घर वालों पर......न मास्टर पर ......मुझे सिर्फ़ पारो पर .गुस्सा आता था और रह रह कर आता था......बदमाश......कमीनी......कहती थी इसके कपड़े छीन लो......हाय हाय, न हुई उस वक़्त मेरे पास जादू की छड़ी, नहीं तो कमबख़्त को एक पल में चुहिया बना देता......

पारो मेरे मुहब्बत के जज़्बे की पहली हार थी। यह अलग बात है कि उस वक़्त मैं उस हार, उस रंज, उन आँसुओं को न पहिचान सका था लेकिन......शिकस्तों, पराजयों के इस लम्बे जलूस पर जब कभी मैं मुड़कर नज़र दौड़ाता हूँ तो निगाह की हद पर मुझे पारो का कुन्दनी चेहरा नज़र आता है। उसकी भोली-भोली आँखों में मासूम शरारत है और अपने दाँतों में उसने एक सुनहरी लट दाब रक्खी है और ख़ामोशी से हँस रही है......

दूसरे दिन शायद कोई त्योहार था और मैं नये कपड़े पहिने बंगले के बाहर ज़र्द गुलाब को क्यारी में खड़ा था और इस उम्मीद में था कि कब माँ कैमरा लेकर बाहर आयें और मेरा

फ़ोटो उतरे। इतने में अमजद हाथ में गोफिया लिये दौड़ता हुआ वहाँ से गुज़रा। मुझे देखकर ठिठक गया। कहने लगा— "यहाँ खड़े क्या कर रहे हो ?"

मैंने मुँह फेर लिया।

उसने गुलाब के फूलों पर मंडराती हुई रंग-बिरंगी तितलियों को देखा और कहने लगा—"अहा हा हा ! तुम्हारे यहाँ तो बड़ी अच्छी तितलियाँ हैं। तुम इन्हें पकड़ते नहीं......?"

उसके लहजे में बड़ी नर्मी थी। जैसे वह मुझसे माफ़ी माँग रहा हो। मेरा दिल भी थोड़ा सा पसीजा, लेकिन मैं चुप हो रहा। उसने अपने गोफिये में एक कंकड़ रखकर ज़ोर से चलाया और बोला—"लो......यह कंकड़ वहाँ पारो के घर तक चला गया है। आज पारो ने नये कपड़े पहिने हैं।"

मैं चुप हो रहा।

"हम मन्दिर में ब्याह करने जा रहे हैं।" वह बोला।

मैं जवाब देने को था कि सामने से मुझे पारो आती दिखाई दी। वह उजले कपड़े पहिने अपने बाप की उंगली पकड़े चली आ रही थी और उसके साथ एक छोटा सा लड़का था जिसके सर पर एक निहायत ख़ूबसूरत हरे रंग के सितारों वाली मख़मली टोपी थी, और पाँव में चर्र-मर्र करता हुआ नया जूता था।

"यह उसके चाचा का लड़का है।" अमजद ने ख़ुद मुझे बताया।

पारो ने हम दोनों को पीले गुलाब की क्यारी में खड़े देखा। उसने हम दोनों को एक निगाह भर के देखा और फिर एक घमण्डी दाब से मुँह फेर लिया और अपने चचेरे भाई से

हँस-हँस कर बातें करने लगी। फिर वे दोनों बाँहों में बाँहें डाले पारो के बाप के आगे नाचते हुए दौड़ने लगे। पारो का बाप देख देख कर ख़ुश हो रहा था।

अमजद के चेहरे का रंग उड़ गया। उसने बड़ी एहतियात से गोफिये में एक कंकड़ रक्खा और उसे एक ज़न्नाटे के साथ पारो और उसके साथी लड़के की तरफ़ फेंका। पारो ने मुड़ कर हमारी तरफ़ शरीर निगाहों से देखा और फिर मुस्करा कर उसने बालों की एक लट अपने दाँतों में दाब ली और फिर नाचती दौड़ती आगे चली गई...।

अमजद ने मेरा हाथ पकड़ लिया और राज़दाराना लहजे में बोला—"बड़ी कमीनी है पारो!"

"कमज़ात है।" मैंने कहा।

"और उसका बाप तो देखो।" वह बोला—"गंजा, सड़े चमड़े की तरह...!"

मैंने कहा—"उसकी नाक देखी? करैले की तरह!"

अमजद बोला—"और उस लड़के का मुँह कैसा था? जैसे फटा हुआ ढोल!"

"और वह चलता कैसे था?" मैंने उसकी नक़ल उतारते हुए कहा—"बागड़बिल्ले की तरह।"

"अरे, वह तितली, आहा हा हा।" अमजद चिल्लाया।

और फिर हम दोनों बाड़ फाँद कर हाथ में हाथ डाले उस याक़ूती तितली की तरफ़ लपके, जो बग़ीचे में नाचती हुई जा रही थी।

प्रेमिका

"जब मैं एफ० ए० में फ़ेल होकर इस गाँव में वेक्सीनेटर बन कर आया, तो वह चीज़, जिसने सब से अधिक मुझे अपनी ओर आकर्षित किया, रेशमाँ थी। रेशमाँ की सुन्दरता की चर्चा तो मैं इससे पहले भी बहुतों से सुन चुका था और ख़ास कर रास्ते में एक पुलिस सार्जेण्ट ने, जब उसे मालूम हुआ कि मैं पिंडोर के गाँव में वेक्सीनेटर बन कर जा रहा हूँ, मुझे बताया—"पिंडोर की मनोहर घाटी में तो बहुत सी चीज़ें और स्थान देखने के योग्य हैं। लक्ष्मण कुण्ड जिसकी गहराई का पता आज तक कोई अँग्रेज़ भी न लगा सका! जागीरदार साहब का पुराना महल, जिसके चौकोर बुर्ज धूप में सोने की तरह चमकते हैं, और जो आजकल उजाड़ पड़ा है और सिर्फ़ उसी समय काम में लाया जाता है, जब जागीरदार साहब या

उनके मेहमान या लड़के-बाले कभी पिंडोर की घाटी में शिकार खेलने के उद्देश्य से आते हैं! खट्टे अनारों का जंगल, जो पिंडोर की पश्चिमी पहाड़ियों पर फैला हुआ है और जहाँ जंगली सेब, आलूचे और अमलोक के पेड़ भी पाये जाते हैं, जहाँ जंगली गुलाब की बेलें किसी प्रेमी की बाहों की भाँति उन फलदार वृक्षों से हर समय लिपटी रहती हैं और जिनकी गोद में बनफ़शे के फूल प्रतिक्षण मुस्कराते और शरमाते हैं। हाँ, पिंडोर की घाटी में बहुत सी चीजें दर्शनीय हैं। लेकिन अगर वहाँ तुमने रेशमाँ को न देखा, तो समझ लेना कि तुमने पिंडोर में कुछ न देखा।"

"सचमुच ?" मैंने धीरे से पूछा।

"ख़ुदा की क़सम !"—पुलिस सार्जेण्ट ने एक लम्बी आह भर कर कहा, और घोड़े पर सवार होकर चला गया।

यद्यपि मुझे विश्वास तो अब भी न हुआ, लेकिन रेशमाँ को देखने का शौक़ दिल में घर कर गया। आख़िर वह भी ऐसी क्या हसीन परी होगी ? इन पुलिसवालों की बातों पर विश्वास कम ही करना चाहिये। और फिर औरतों के विषय में तो उनका यह विश्वास है कि हर औरत सुन्दर होती है; चाहे वह मिट्टी ही की क्यों न हो !

अब तो मेरी हालत उस बूढ़े मुर्ग़े की-सी है जो जवानी चली जाने पर भी अपने को जवान समझता है। लेकिन उन दिनों जब मैं नया-नया वेक्सीनेटर बन कर यहाँ आया था, तो मेरा रंग-रूप बहुत से लोगों के लिये ईर्ष्या का कारण था। इसमें भी संदेह नहीं कि उन दिनों गाँव भर में मैं ही अपने ढंग का सजीला जवान था और फिर एण्ट्रेन्स पास और सफ़ेद लट्ठे की शलवारें पहिनने वाला ! ग्यारह रुपये वेतन था,

कुलाह पर तुर्रेदार पगड़ी, पाँव में कामदार जूते और चेहरे पर मूछें—साइकिल के हैंडिल की तरह मुड़ी हुई। हाँ, वह ज़माना था मेरे बाँकेपन का। अब तो यौवन के वसन्त पतझड़ में बदल चुके हैं।

आह दोस्त, वे भी क्या दिन थे! काश, तुमने मुझे जवानी में देखा होता! ग़ालिब के दीवान में एक शैर मुझे बहुत पसन्द है, वह है—वह है ..आह, इस समय कमबख़्त मुझे याद नहीं आ रहा है, दिमाग़ चकरा ..ज़बान पर आ रहा है, लेकिन... अच्छा...

हाँ, तो मैं रेशमाँ के विषय में कह रहा था, लेकिन मैं रेशमाँ के विषय में क्या कहूँ?

रेशमाँ की आँखें, उन नील पुतलियों की अथाह गहराइयाँ, वे आँखें उन दो स्वच्छ व पवित्र झीलों की भाँति थीं, जो किसी ऊँचे पर्वत की चोटी पर स्थित हों, जहाँ किसी मनुष्य के क़दम भी न पहुँचे हों। रेशमाँ के कोमल होंठ, शरमाये और लजाये-से होंठ मानों वे अपनी सुन्दरता पर स्वयं लज्जित हों। उसके कोमल हाथ, सफ़ेद अँगुलियों की पोरें, जंगली गुलाब की कलियों की तरह सुन्दर थीं। उसकी चाल—जैसे वसन्त की देवी अपनी समस्त मनोहरता और सौंदर्य को लिये वायु के झोंकों पर इठलाती हुई आ गई हो। उसकी आवाज़ सनोवर के जंगलों में घूमते हुये गड़ेरिये की बाँसुरी की भाँति मधुर और शीतल झरनों के स्वर की भाँति लोचदार। उसका क़द, फ़ारसी का एक शैर है, एक बहुत ही उपयुक्त शैर है, लेकिन.. कमबख़्त याद ही नहीं आ रहा है, बिल्कुल ज़बान पर फिर रहा है, आह! क्या ख़ूब शैर था, नज़ीरी का शैर, नहीं, इरफ़ी का, आह! अब

स्मरण-शक्ति कितनी कमज़ोर हो गई है! कुछ याद नहीं रहता—कुछ याद नहीं रहता। मुझे अब तो अपनी कवितायें भी याद नहीं। आश्चर्य है, उन दिनों मेरी स्मरण-शक्ति कितनी प्रबल थी!

तो यह थी रेशमाँ, पिंडोर की सुन्दर घाटी की सुन्दरी! निस्सन्देह वह एक दुर्लभ चीज़ थी और लोग दूर-दूर से उसे देखने के लिये आया करते थे। उनके बाप के पास प्रति दिन रेशमाँ के सम्बन्ध के लिये सन्देश आया करते। कोई पाँच सौ रुपये, कोई एक हज़ार, कोई डेढ़ हज़ार, और कोई मनचला तीन हज़ार रुपये तक देने को तैयार था, लेकिन उसका बाप शायद जवाब में इन्कार करना ही जानता था। कम से कम मैंने तो उसे किसी से हामी भरते न देखा, न सुना,—ख़ुदा जाने उसके मन में क्या था! शायद वह अपनी लड़की को किसी बादशाह के साथ ब्याहना चाहता था, और यों रेशमाँ भी तो किसी बादशाह के घर के ही योग्य थी!

लेकिन, जैसा कि मैंने कहा, जवानी बुरी बला है, और जवानी का प्रेम उससे भी अधिक ख़तरनाक! मैंने रेशमाँ को देखते ही समझ लिया कि दुनिया में रेशमाँ सिर्फ़ मेरे लिये है, और मैं उसके लिये। और यह ठान लिया कि चाहे उसके बाप को जान ही से क्यों न मारना पड़े, उसको भगाना ही क्यों न पड़े, लेकिन अगर विवाह होगा, तो सिर्फ़ रेशमाँ से, नहीं तो जान पर खेल जाऊँगा। उसके सारे घर की हत्या कर डालूँगा, सारे गाँव को आग लगा दूँगा, उसके सामने पहाड़ी पर से नीचे नाले में कूद कर मर जाऊँगा, लेकिन यह कभी न होगा कि मेरे जीते जी मेरी रेशमाँ का कोई और व्यक्ति, चाहे वह जागीरदार का बेटा ही क्यों न हो, ब्याह कर ले

जाय। जवानी में आदमी कैसी-कैसी विचित्र बातें सोचा करता है—मूर्ख की सी बातें—फ़िज़ूल, ख़तरनाक, अदूरदर्शिता की बातें!

तो साहब! मैंने रेशमाँ के प्रेम में सिर-धड़ की बाज़ी लगा दी। लोगों को टीका-टिप्पणी लगाना कैसा? हर समय रेशमाँ के पीछे-पीछे फिरने लगा, पागल कुत्ते की तरह। वह झरने पर पानी भरने जाती, तो मुझे पहिले ही मौजूद पाती। चरवाहों के साथ जंगल जाती, तो मैं भी अपनी तोड़ेदार बन्दूक़ लिये हुए जंगल में पहुँच जाता। मैं उन दिनों गाना भी बहुत अच्छा जानता था: मेरा मतलब है कि मैं माहिया बहुत मज़े में गाया करता था, और अक्सर लोग मेरे माहिया गाने पर बहुत प्रसन्न होते थे। कहते थे कि कोई मीरासी भी इतना अच्छा माहिया नहीं गा सकता। लेकिन अब वह दिन कहाँ, अब तो दिन में मुझे दस बार खाँसी की शिकायत होती है। तुम शहर में रहते हो, कभी कोई अच्छी सी दवा ही भेज दिया करो। नहीं तो तुम्हारे शहर में रहने से हमें क्या फ़ायदा—क्यों?

ख़ैर!...एक दिन की बात है—मैं किसी क़रीब के गाँव से चेचक के टीके लगा कर वापस आ रहा था। शाम हो चुकी थी और पश्चिम से हल्की-हल्की हवा चल रही थी। मैं बहुत दुखी था, क्योंकि दिन भर मैं गाँव से बाहर रहने के कारण रेशमाँ के दर्शन से वंचित रहा था, अतः बहुत ही करुण स्वर में धीरे-धीरे—'फ़िराक़े जानाँ में हमने साक़ी लहू पिया है शराब करके!'—गाता हुआ चला आ रहा था। मैं उस समय बहुत उदास था, मेरी आँखों में शायद उस समय आँसू छलक रहे थे और मुझे अपने आप पर बहुत क्रोध आ रहा था। गाँव की सीमा में दाख़िल होने से पहिले रास्ते में एक ख़ूबानी का वृक्ष

आता है, अतः जब मैं उस .खूबानी के वृक्ष के निकट पहुँचा, तो क्या देखता हूँ कि तने का सहारा लिये अपनी सुनहरी काकुलों को अपने कोमल कंधों पर बिखराये रेशमाँ खड़ी मेरी राह देख रही है। मैं ठिठक कर खड़ा हो गया।

कुछ क्षण सदियों की तरह बीते। फिर रेशमाँ बोली, अपने कोमल और मधुर स्वर में—"जी, आप मुझे क्यों तंग करते हैं?"

मैंने कहा—"इसलिये कि मैं तुम्हें चाहता हूँ, और तुम्हें देखे बिना ज़िन्दा नहीं रह सकता।"

रेशमाँ बोली—"जी, मुझे सब सहेलियाँ ताने देती हैं और फिर आपका इस तरह मेरे पीछे-पीछे फिरना ठीक भी तो नहीं! मैं आपको गालियाँ दूँगी, तो फिर आप..."

मैंने कहा—"तो मैंने कब मना किया है? आप शौक़ से गालियाँ दें। मैं उन्हें सुनता जाऊँगा और फिर इकट्ठा कर लूँगा, फिर उनका फूलों की तरह हार बना कर अपने गले में पहन लूँगा।"

रेशमाँ बोली—"हम ठहरीं अनपढ़! भला हमें आपकी तरह बातें बनाना कहाँ आता है? लेकिन मैं आपसे फिर कहती हूँ, .खुदा के लिये आप मेरा पीछा करना छोड़ दें। अब्बा आपके प्राणों के ग्राहक हो रहे हैं। कहते थे—अगर वह लड़का बाज़ न आया तो उसे क़त्ल कर डालेंगे।"

मैंने सिर झुका कर कहा—"यह सर हाज़िर है। अभी गरदन उड़ा दीजिये। अगर उफ़ भी कर जाऊँ तो..."

रेशमाँ ने एक अजीब अदा से सिर हिला कर कहा-"हाय, मैं यह कब कहती हूँ कि आप मर जायँ, लेकिन आखिर...आप चाहते क्या हैं ?"

"मैं कुछ नहीं चाहता।" मैंने अपना हाथ अपने कलेजे पर रख कर कहा—"हाँ, सिर्फ़ यह चाहता हूँ कि जब तुम यहाँ से चली जाओ तो, तुम्हारे प्यारे चरणों की धूल अपने माथे से लगा लूँ, और तुम्हारा नाम लेता हुआ इसी दम इस संसार से विदा हो जाऊँ।"

रेशमाँ मुस्कराई। एक बालिका की तरह नहीं, बल्कि एक स्त्री की तरह मुस्कराई। उसने पलकें उठा कर एक क्षण के लिये मुझे देखा, फिर वे पलकें गुलाब के फूलों की तरह सुन्दर और कोमल कपोलों पर झुक गईं। दूसरे क्षण वह हँसती हुई वहाँ से भाग गई। भागती जाती थी और मुड़-मुड़कर मेरी ओर देखती जाती थी।

कुछ क्षण तो मैं चुपचाप शिलामूर्ति की भाँति निश्चल खड़ा रहा, फिर मैंने भी रेशमाँ के पीछे तेज़ी से भागना शुरू किया। वह एक हिरणी के समान तेज़ भाग रही थी। उसके मुँह से हँसी की चीखें निकल रही थीं। धीरे-धीरे, लेकिन विश्वस्त रूप से, हम दोनों के बीच का अन्तर कम हो रहा था।

अब मैं उसके बिलकुल निकट आ गया था, लेकिन अभी उसे छू नहीं सकता था।

वह अब अधिक तेज़ी से भागने लगी।

लेकिन मैं अब और भी निकट आ गया था और हमारे बीच बिलकुल थोड़ा-सा अन्तर रह गया था।

"देखो, हमें.. हमारा पीछा मत करो...मैं कहती हूँ, यह अच्छा नहीं..."

एक छलाँग लगा कर मैंने उसे जा दबोचा और गोद में उठा लिया।

"अब किधर जाओगी ?" मैंने कहा।

"मुझे छोड़ दो...मुझे छोड़ दो...मैं घर जाऊँगी।" उसने धीमे स्वर में कहा।

मैं एक चनार के वृक्ष के निकट जाकर रुक गया और उसे हरी घास पर धीरे से गिरा दिया, और फिर उसके पास ही सुस्ताने के लिये बैठ गया।

"देखा तुमने ? तुम मुझसे भाग कर कहीं नहीं जा सकतीं।" मैंने हँस कर कहा।

वह चुप बैठी रही और अपने बिखरे बाल ठीक करती रही।

हम गाँव से बहुत दूर निकल आये थे। ऊषा की लाली ग़ायब हो चुकी थी, लेकिन फिर भी नदी का पानी एक चाँदी के तार की भाँति चमक रहा था। हाँ, पहाड़ों पर अब जंगल नहीं दिखाई देते थे—अंधकार की कालिमा में लुप्त हो चुके थे। कहीं-कहीं तारे भी निकल आये थे।

मैंने रेशमाँ से पूछा—"तुम मुझसे विवाह कब करोगी ?"

"कभी नहीं।"

"क्यों ?"

"तुम तेली हो, हम मुग़ल हैं।" रेशमाँ ने शोखी से कहा।

"इससे क्या होता है ?" मैंने रेशमाँ का हाथ अपने हाथ में लेकर कहा—"क्या तुम्हें मुझसे प्रेम नहीं है ?"

"कभी नहीं।"

"तो फिर तुम मेरे पास क्यों बैठी हो ?"

जवाब में रेशमाँ ने मुझे प्रेमपूर्ण दृष्टि से देखा, फिर सहसा वह कुछ सोच कर काँप उठी और धीरे से कहने लगी—'मैं आज खूब पिटूँगी। अब्बा मुझे ढूँढ रहे होंगे। लेकिन यह कह तो आई थी कि मैं मौसी के यहाँ जा रही हूँ, मगर अब देर भी तो बहुत..."

मैंने बात काट कर कहा—"तुम जैसी नटखट लड़कियाँ इसी योग्य हैं कि उन्हें खुब पीटा जाय।"

रेशमाँ बोली—"मैं जानती हूँ कि तुम मुझे कभी नहीं पीटोगे।

मैंने कहा—"हाँ, क्योंकि मैं एक तेली हूँ और तुम मुग़लज़ादी हो।"

रेशमाँ ने अपना कोमल हाथ मेरे कन्धे से लगाया, फिर एकदम अपना सिर मेरी छाती पर रख दिया—"तुम कितने नासमझ हो !" उसने एक आह भर कर कहा।

और मुझे ऐसा जान पड़ा कि एकाएक आस्मान के सितारे खिलखिला कर हँस पड़े हैं और चन्द्रमा के प्रकाश में सफ़ेद-सफ़ेद बादलों की काँपती हुई कोमल परछाइयाँ किसी अज्ञात प्रसन्नता के कारण नाचने लगी हैं और पछुआ वायु के झोंके चनार के पत्तों में छिप-छिप कर अमर जीवन के गीत गा रहे हैं। मैंने रेशमाँ की लम्बी-लम्बी काकुलों में उँगलियाँ फेरते हुए महसूस

किया कि यह प्रसन्नता मेरे लिये असहनीय होगी। और जब मैंने इच्छा-विवश होकर उसके होठों पर अपने होंठ रख दिये, तो मुझे प्रतीत हुआ कि उन होठों में पहाड़ी मधु की-सी मधुरता है और धधकते हुए अंगारों की-सी गरमी और जलन ! दोनों ही अनुभव थे—एक कष्टप्रद प्रसन्नता और एक आनन्द-दायक कष्ट !

इसके बाद आठ-दस दिनों का हाल मैं तुम्हें अच्छी तरह नहीं बता सकता। कुछ याद नहीं आता। जीवन एक सुखमय स्वप्न की भाँति बीत रहा था, जिसमें मैं और रेशमाँ ही थे। कुछ विचित्र-सी हालत थी। शराब का-सा नशा, मनोहर संगीत की-सी मस्ती, सारा गाँव स्वर्ग-सा दीख पड़ता था और दूर से जागीरदार साहब के पुराने महल के बुर्ज सोने के कलसों की भाँति चमकते थे—विचित्र और रहस्यमय ! मुझे ऐसा मालूम होता कि यह समस्त संसार, प्रकृति की सुन्दरता, पक्षियों का कलरव, बेफ़िक्र गड़रियों के ठहाके हमारे ही लिये पैदा किये गये हैं—मेरे और रेशमाँ के लिये ; जिसमें कि शाम के झुटपुटे में हम दोनों छिप कर और बाहों में बाहें डालकर गाँव से बाहर किसी नन्हें से उपवन में जा बैठें और इन दृश्यों का आनन्द उठायें।

मगर यह सब कुछ आठ-दस दिन के लिये था। इसके बाद एक क्रूर हाथ ने एक ज़ोरदार झटके के साथ मेरे मनोहर स्वप्न को बिखेर दिया। ठीक उस दिन जब हम दोनों ने गाँव से भाग जाने की सलाह की थी, रेशमाँ के ज़ालिम बाप ने उसे जागीरदार साहब के बड़े लड़के के हवाले कर दिया। यह तो मुझे बाद में मालूम हुआ कि बहुत दिनों से गुप्त रूप से सलाह हो रही थी। जागीरदार साहब का बड़ा लड़का बड़ा दुराचारी है। जिस तरह बड़े आदमियों की आदत होती है, वह रेशमाँ पर लट्टू था। कहीं

शिकार खेलते, आते-जाते देख लिया होगा, बस रेशमाँ के बाप पर डोरे डालने शुरू कर दिये। इधर मेरी अज्ञानता का यह हाल कि मुझे उस समय पता चला, जब रेशमाँ शहर में जागीरदार साहब के महल में पहुँचाई जा चुकी थी।

यह चोट इतनी गहरी और अचानक थी कि मैं अपने हवास ठीक न रख सका। लोग कहते हैं कि इस घटना के बाद दो वर्ष तक मैं पागल-सा रहा, सूख कर बिलकुल काँटा हो गया था, दर-दर घूमता था और लोगों से कहता था—"मुझे बचाओ, मुझे बचाओ, वह मुझे काटने को आ रही है।" बस ये ही दो शब्द थे, जो हर समय मेरी ज़बान पर रहते। सुना है कि एक दिन जब मैं जागीरदार साहब के शहर में घूम रहा था, उन्होंने मुझे कहीं देख लिया और जब किसी मुसाहिब से उन्होंने मेरी राम कहानी सुनी, तो मुझ पर बहुत तरस खाया और इलाज के लिये शिकारपुर के पागलख़ाने में भेज दिया। हाँ, जब मैं दो वर्ष के बाद स्वस्थ हो गया, तो मुझे फिर अपने पुराने स्थान पर उसी घाटी में नियुक्त करा दिया लेकिन इस गाँव में नहीं, बल्कि दूर के गाँव में, जो यहाँ से दस मील दूर था।"

इतना कह कर वेक्सीनेटर चुप हो गया, और हुक़्क़ा गुड़गुड़ाने लगा। रशीद ने धीरे से पूछा—"और रेशमाँ ?...तुमने उसे फिर कभी देखा ?"

"रेशमाँ जागीरदार साहब के बड़े लड़के के महल में है। यद्यपि वहाँ स्त्रियां बहुत हैं, लेकिन रेशमाँ को अपने स्वामी की चहैती होने का गर्व ज़रूर हासिल है। उसके दो लड़के भी हैं... मैंने उसे आठ-नौ वर्ष हुए, उसके बाप के घर इसी गाँव में देखा था, जब वह अपने भाई के विवाह के अवसर पर यहाँ आई थी।

उसका बाप, अब क्या यह भी बताने की ज़रूरत है, कि इस गाँव का नम्बरदार है और इलाक़े का ज़िलेदार। उसका मकान पत्थरों से बना है। तुमने रास्ते में देखा तो होगा, वह जिस पर टीन की छत है और जिसके पीछे एक बड़ा-सा बग़ीचा है...मैंने उसे बग़ीचे में देखा था। वह सुन्दर रेशमी वस्त्र पहिने टहल रही थी। उसके साथ उसके दोनों छोटे-छोटे लड़के थे। वह अब बेहद सुन्दर थी। उसकी चाल राजकुमारियों जैसी थी। मैं देर तक बाड़े की ओट में खड़ा उसे देखता रहा। रेशमाँ जो कभी मेरी पत्नी होती, रेशमी कपड़ों के बजाय वह लालधारी की भारी क़मीज़ और छींट की क़मीज़ पहिन कर मेरे अपने बच्चों को लेकर यों टहला करती, यह सोच कर मेरी आँखों में आँसू भर आये और उन्हें पोछने की कोशिश किये बिना ही मैं बाड़े की ओट से बाहर निकल आया और उसे गालियाँ दीं। उसके सारे ख़ानदान को जी भर कर और चिल्ला-चिल्लाकर कोसा और उस समय तक वहाँ से न टला, जब तक लोग मुझे वहाँ से खींच कर और घसीट कर दूर न ले गये।"

"और रेशमाँ ने तुम्हें कुछ न कहा ?" रशीद ने पूछा।

"नहीं, मुझे देख कर वह ठिठक कर खड़ी हो गई। फिर उसने गर्दन झुकाली और चुप-चुप गालियाँ सुनती रही। उसकी आँखों की नीली झीलों से आँसुओं के स्रोत बह निकले और उस अपने काँपते हुए हाथों से अपने दोनों लड़कों को अपने साथ लिपटा लिया।...बाद में जब वह अपने गाँव से चली गई, तो उसकी एक पुरानी सहेली ने मुझे बताया कि उसके इस सवाल पर कि तुमने वहाँ बग़ीचे में खड़ी रह कर उसकी गालियाँ क्यों सुनीं, रेशमाँ ने जवाब दिया—"उस वक़्त वह अगर मुझे पीट डालता या जान से मार डालता, तो भी मैं वहाँ से न हिलती।'...

फिर उसने कहा—'ऐ मेरी प्यारी सखी, वे गालियाँ न थीं, फूल थे—मेरे प्रेमी के, जिन्हें मैंने चुन-चुन कर अपने आँसूओं के तार में पिरो लिया और अपने हृदय की समाधि पर चढ़ा दिया, जिसमें कि प्रेम की समाधि सूनी न रहे

"लेकिन," वेक्सीनेटर ने करुण स्वर में अपनी कहानी समाप्त करते हुए कहा—' मुझे अब किसी पर क्रोध नहीं, किसी से प्रेम नहीं, मैं अब किसी का लिहाज़ नहीं करता। पहिले चेचक के टीके मुफ़्त लगता था, अब दो आने लिये बिना किसी के बाज़ू को हाथ तक नहीं लगाता। मुझे किसी की परवाह नहीं। मैं अपना रुपया ड्योढ़े सूद पर उधार देता हूँ। इस गाँव में सिवाय रेशमाँ के बाप के सब मेरे ऋणी हैं। वे मुझे कंजूस और ज़ालिम कहते हैं, लेकिन उन्होंने कब मेरा भला चाहा? उनका बस चले, तो मुझे आज मार डालें, लेकिन मुझे किसी की परवाह नहीं, किसी से प्रेम नहीं, मेरे पास रुपया है, ज़मीन है, बाल-बच्चे हैं, तीन निकाह कर चुका हूँ, मुझे किसी की परवाह नहीं, किसी से प्रेम नहीं, किसी पर गुस्सा नहीं। मैं जागीरदार साहब की वफ़ादार प्रजा हूँ, उनका ग़ुलाम हूँ।"

"क्या सचमुच तुम्हें किसी पर गुस्सा नहीं आता?" रशीद ने तीक्ष्ण दृष्टि से वेक्सीनेटर की ओर देख कर पूछा।

वेक्सीनेटर घबरा-सा गया। आँखें नीची करके बोला—"नहीं, हरगिज़ नहीं। मेरा दिल साफ़ है, लेकिन दोस्त......" अब वेक्सीनेटर ने अपनी निगाहें ऊपर उठा लीं और रशीद की ओर लज्जित दृष्टि से देख कर कहने लगा "मैं एक बात तुमसे कहना चाहता हूँ। उसे कहते समय मेरा सीना फटा जाता है, और मैं तुमसे यह बात कहे बिना

नहीं रह सकता। वह बात जागीरदार साहब के इस पुराने महल के बुर्जों के विषय में है। मैं इन्हें धूप में सोने की तरह चमकते हुए देख कर पागल हो जाता हूँ। मुझे ऐसा लगता है, मानो वे मुझ पर हँस रहे हैं, मुझे चिढ़ा रहे हैं। मैं उन्हें साफ़ कहते हुए सुनता हूँ—'तुम हमें नहीं जानते। हम अब भी तुम्हारी दुनिया को बरबाद कर सकते हैं, तुम्हारे सुख और शान्ति को धूल में मिला सकते हैं, तुम्हारे जीवन के उल्लासों को पाँव-तले रौंद सकते हैं। तुम हमें नहीं पहिचानते। हा! हा! हा!'

"और मैं पागल हो जाता हूँ, और सोचता हूँ कि जब तक ये चमकते हुए बुर्ज मौजूद हैं, मेरे मन को शान्ति नहीं प्राप्त हो सकती। बहुधा मेरे मन में विचार उठता है कि एक-दो रुपये की बारूद लेकर मैं रात के समय इस पुराने महल के निकट जाऊँ और बारूद लगा कर भक से इन बुर्जों को उड़ा दूँ, तो......तो......लेकिन मैंने हर बार इस विचार को मन में ज़ोर से दबा दिया है।"

और वेक्सीनेटर ने राज़दाराना लहजे में रशीद की ओर झुक कर कहा—"लेकिन एक दिन मैं इस काम को अवश्य पूरा कर के छोड़ूँगा..... "

जन्नत और जहन्नम

ज़ेनी के बारे में मैं क्या जानता हूँ, यह तो मैं दावे से कुछ नहीं कह सकता। इन्सान की ज़ेहनी कैफ़ियतें समुद्र के ज्वार-भाटे की तरह दिल के किनारे पर आती हैं और अक्सर बहुत ही मनोहर, नापायदार और अस्पष्ट चिन्ह छोड़ जाती हैं और प्रायः यह अस्पष्ट से चित्र लहरों के दूसरे रेले में ही इस तरह नष्ट हो जाते हैं कि फिर उनका नाम निशान भी नहीं पा सकता। या फिर नये चिन्ह अपनी नई सजावट और सुन्दर सामंजस्य से नई सुन्दर कैफ़ियतें पैदा कर देते हैं और उनकी गोद में उस किनारे की रेत का हर ज़र्रा गुनागुना उठता है—क्या इससे पहले भी ज़िन्दगी थी या यह जीवन संगीत की एक बेचैन लय है ?

लेकिन कुछ चित्र इतने नापायदार और अस्पष्ट नहीं होते और वे जीवन तट हर ऐसी तस्वीरें खींच देते हैं जो मुद्दत तक

क़ायम रहती हैं। ऐसी ही तस्वीरों में एक तस्वीर जेनी की भी है, और दरअसल एक ही नहीं बल्कि तीन। क्योंकि जब कभी मुझे जेनी का ख़याल आता है तो एक ही समय में उसकी तीन विभिन्न तस्वीरें समाने आ जाती हैं, तीन विभिन्न चित्र, तीन विभिन्न क्षण, निगाह के तीन विभिन्न कोण, जिस तरह सात रंगों से मिलकर इन्द्रधनुष बनता है इसी तरह इन तीन तस्वीरों की तरतीब से जेनी की जिन्दगी की कहानी बन जाती है। लेकिन यह ज़िन्दगी इन्द्रधनुष से बहुत भिन्न है, कहीं अधिक भिन्न !

देखने में तो जेनी इन्द्रधनुष के समान ही सुन्दर थी। मैंने जब पहले पहल उसे देखा तो उस वक़्त मैं सात पुलों वाले शहर के सबसे सुन्दर पुल अमीराकदल पर झुका हुआ जेहलम की सितह पर तैरती हुई दुनिया का जायजा ले रहा था। यों ही बेकार-सा, आवारा-सा, उकताया हुआ, श्रीनगर की दिलचस्पियों को एक नीरस सितही अन्दाज़ से देख रहा था। शिकारों के लाल-लाल फूलों से कढ़े हुए पर्दे एक तरफ़ को हटे हुए थे और उनमें कहीं मोटे मोटे मर्दों के साथ परियों की सी ख़ूबसूरत औरतें सवार थीं, जिनके चेहरे और जिनके सुनहरे बुन्दे दोपहर की धूप में एक से ढंग से चमक रहे थे, कहीं स्वस्थ, सुन्दर नौजवानों के हमराह भद्दी और बदशक्ल औरतें अपने बेहतरीन लिबास पहिने बैठी थी और अपने सौभाग्य पर नाज़ कर रही थीं। जो औरत जितनी ज्यादा बदसूरत थी वह उतना ही अच्छा और भड़कीला लिबास पहिने थी। दरअसल पर्दे की रस्म तो इन्हीं औरतों के लिये बनाई गई थी और उनके पतियों के चेहरे कम से कम उस वक़्त तो यही कह रहे थे। बेचारे दूसरे शिकारों में बैठी हुई ख़ूबसूरत औरतों को घूर-घूर कर अपने नुक़सान की पूर्ति करना चाहते थे और उनकी अपनी पत्नियाँ निहायत

दिलफ़रेब, मीठी आवाज़ में हँस-हँस कर उन्हें अपनी ओर आकृष्ट करने की कोशिश कर रही थीं। कम से कम मुझे उनकी आवाज़ बहुत मधुर मालूम हुई। मीठी, जैसे कोयल की कूक, और आख़िर कोयल का रंग भी त. काला ही होता है !

शिकारे .खूबसूरत और बदसूरत लोगों से ल: हुए थे, लेकिन उनमें ज़िन्दगी की हरकत, बेचैनी, इज़तराब सब कुछ मौजूद था। वे पानी की सतह पर भागते हुए जा रहे थे, लाल-लाल पर्दे हिलते हुए दिखाई देते। भद्दी शक्लें .खूबसूरत तस्वीरों में बदल जातीं, ठहाके और हाँजियों के गीत एक ही नग़मा बन जाते और वे शिकारे दरबार हाल के सामने उसके सफ़ेद-सफ़ेद खम्भों के पास पहुँच कर वेनिस नगर का सा नज़ारा पेश करते हुए एकदम मोड़ पर ग़ायब हो जाते। लेकिन यह हरकत, यह ज़िन्दगी उन लम्बे-लम्बे दूसरे दरजे के डोंगों या हाउस बोटों में न थी जो पानी की सतह पर चुप-चाप बदनुमा बतख़ों की तरह तैर रहे थे। उनकी खिड़कियाँ बन्द थीं लेकिन पर्दे लटक रहे थे। सिर्फ़ एक हाउस बोट में एक खिड़की खुली थी। खिड़की के दोनों ओर दो अंगरेज़ औरतें बैठी हुई सोयटर बुन रही थीं। क्या ये लोग श्रीनगर में सोयटर बुनने आते हैं, या मेरी तरह पुल के जंगले के क़रीब खड़े होकर सिर्फ़ तमाशा देखने के लिये ?

और फिर मुझे उस वक़्त ज़ेनी दिखाई दी। जेहलम के पानी का एक ही रेला उसे मेरे दिल के किनारे के क़रीब खेंच लाया। वह एक छोटे से डोंगे के किनारे पर खड़ी किश्ती का रुख़ बदल रही। रुख़ बदलने का चप्पो उसके हाथ में था और चाँदी का एक 'झुमका' उसके कान में किसी ख़ामोश गीत की धुन पर काँपता हुआ मालूम होता था। फिर जैसे वह बिजली की

तेज़ी की तरह पुल के नीचे से गुज़र गई और मुझे डोंगे का दूसरा सिरा नज़र आया। यहाँ एक लम्बी से डांड लिये एक ग्यारह-बारह साल का लड़का डोंगे को खे रहा था। उसका गोल सुर्ख़ सफ़ेद चेहरा और सर पर गोल नक़शीन टोपी भी पुल के नीचे ग़ायब हो गई। और जब मैंने मुड़ कर देखा तो वे पुल के दूसरी तरफ़ आ चुके थे। वह डोंगे को निचले घाट पर लगाने के लिये रुख़ बदल रहे थे। डोंगे की सब खिड़कियाँ खुली थीं और उन खिड़कियों के ज़र्द-ज़र्द पर्दे हवा में लहरा रहे थे। मैंने कनपटियों पर हाथ का साया करते हुए डोंगे का नाम पढ़ा, जो धूप में चमकते नीलम के टुकड़े की तरह चमक रहा था—The Heaven" "जन्नत" यह नाम शायद किसी ऐश-पसन्द भ्रमणकारी या किसी अंगरेज़ पादरी ने रक्खा होगा। जन्नत अब निचले घाट के क़रीब आ रही थी। उसके ड्राइंग रूम की बड़ी खिड़की के ऊपर एक चौकोर बोर्ड लटक रहा था "To Let" जन्नत किराये के लिये ख़ाली थी। मैं जंगले से हटकर एक दो मिनट उसकी तरफ़ देखता रहा। ज़ेनी और छोटा लड़का अब उसे किनारे पर बाँध रहे थे। एकाएक मेरे दिल में एक ख़याल आया और मैं तेज़ी से अमीराकदल के पुल से गुज़रता हुआ निचले घाट की सिढ़ियों की तरफ़ चला गया।

ज़ेनी ने मुझे देखते ही सर झुका कर सलाम किया। फिर वह डाँड का सहारा लिये एक अजीब झिझक और एक बेबाकी के साथ किश्ती के किनारे पर खड़ी हो गई और छोटे लड़के से बोली—"अज़ीज़ा, साहब को हाउस बोट दिखाओ।"

अज़ीज़ा हँसता हुआ उठा। वह यों ही हँस रहा था, बग़ैर किसी वजह के, कश्मीरी लड़कों की तरह। उसके दांत, जो टूथपेस्ट के इस्तेमाल के बग़ैर ही मामूली से ज्यादा सफ़ेद थे,

उसके सुर्ख़ होंठों के बीच मोतियों की लड़ी की तरह चमक रहे थे। उसने टोपी अपने सर से उतार कर बेपरवाही से ज़ेनी के क़दमों में फेंक दी और फिर ज़ेनी ने जिस मुलायमियत और स्नेह भरी निगाहों से उसे देखा है, उसे कुछ मैं ही बेहतर जानता हूँ। उसकी आँखें अज़ीज़ा की इस मासूम शोख़ी पर एक दम इस तरह चमक उठीं जैसे सुबह के वक़्त डल के ख़ामोश नीले पानी पर सूर्योदय हो जाय। और जब मैं अज़ीज़ा के साथ ड्राइंग रूम में दाख़िल हुआ तो ज़ेनी की तस्वीर आँखों के सामने ही थी।

अज़ीज़ा कहने लगा—"यह ड्राइंग रूम है, यह इस तरफ़ आईने वाली मेज़ है, यह लिखने की मेज़।"

"वह ?"

अज़ीज़ा ने योंही सर हिलाते और मुस्कराते हुए कहा—"वह ज़ेनी है, मेरी मासी, यह हाउस बोट ज़ेनी के शौहर का है। वह नौकरी की तलाश में सोपुर गया है। यह, इस अलमारी में चीनी के बरतन, दो सेट, चमचे, पिर्च, यह खाने के बरतन, दो गैस लैम्प।"

"अच्छा अच्छा आगे चलो।"

"यह सोने का कमरा है, वह दूसरा कमरा भी सोने का है। इनमें पाँच पलंग आ सकते हैं। मैं और ज़ेनी इस कमरे में रहते हैं, वह छोटा सा कमरा, जो किचन के क़रीब डोंगे के दूसरी तरफ़ है।"

"अच्छा चलो किचन दिखाओ।"

सब कुछ देख लिया। उस छोटे से दूसरे दर्जे के डोंगे को जिसे ज़ेनी और अज़ीज़ा गर्व के साथ अपना बोट कहते थे।

जेनी और अज़ीज़ा के होने वाले साहब ने, जिसे पंजाब में उसके सब दोस्त उसके बेढंगे पन के कारण "लगड़ बगड़ या चख़" कहते थे, सब कुछ देख लिया। लेकिन ज़ेनी को बार बार देख कर भी उसके दिल की प्यास न बुझी।

"ज़ेनी!" मैंने अपनी पतलून पर से मिट्टी का एक ख़याली ज़र्रा उड़ाते हुए पूछा—"इस...जेनी, इस डोंगे का, मेरा मतलब है, इस हाउस बोट का किराया क्या होगा?"

ज़ेनी ने अपनी बारीक आवाज़ में कहा—"क्या साहब यहीं रहेगा?"

"हाँ हाँ, इसी बोट में।"

"तब यह किराये के लिये ख़ाली नहीं।"

"अरे........।" मेरे मुँह से एक दम निकला—" वह क्यों?"

अज़ीज़ा हँसते हुए बोला—"साहब हमें दुल्लर जाना है। दरअसल सोपुर जाना है, मगर रास्ते में दुल्लर आयेगी, झील दुल्लर और मानस बल। हम यह डोंगा लेकर सोपुर जायंगे जहाँ ज़ेनी का घर वाला गया है। फिर हम उसको लेकर वापस आयेंगे। अगर साहब को दुल्लर देखना है तो मंज़ूर। हम सब कुछ दिखायेंगे और किराया भी थोड़ा होगा। अगर साहब को इधर ही रहना है तो फिर हम मजबूर हैं।"

मैं थोड़ी देर खड़ा सोचता रहा। अज़ीज़ा का हँसता हुआ मासूम सा चेहरा बहुत आशापूर्ण था, जैसे वह विनय पूर्ण अन्दाज़ में कह रहा था—'चलो साहब, दुल्लर देखने चलो साहब।' मैंने ज़ेनी की तरफ़ देखा। ज़ेनी का चेहरा आँचल की ओट में था। क्या वह भी अपने पति से मिलने के लिये

बेक़रार थी ? और तू......ऐ शायर मिज़ाज आवारा घुमक्कड़ ! तू इस ख़तरनाक त्रिकोण को क्यों पूरा करना चाहता है ? हविस के ग़ुलाम ! क्या तेरे लिये इस दुनियाँ में कोई और काम नहीं ? कोई आरज़ू, कोई मक़सद नहीं ?

लेकिन दिल के किनारे पर इस क़िस्म की लहरें बहुत ही छोटी छोटी, हलकी और सुखद होती हैं। आईं और चली गईं। और किनारे रेत अपने चमकते हुए लाखों ज़र्रों के साथ हमेशा की तरह किसी प्रेमी का इन्तज़ार करती रहती है !

मैंने आहिस्ता से कहा—"अच्छा अज़ीज़ा, आज शाम को तुम इस हाउस बोट को अमीराकदल के सामने—उस घाट पर ले आना। कल हम दुल्लर चलेंगे।"

"बहुत अच्छा साहब" अज़ीज़ा ने ख़ुशी भरे लहजे में कहा।

ज़ेनी का चेहरा अब भी आंचल की ओट में था।

(२)

हरिसिंह हाई स्ट्रीट की तरफ़ जाते हुए (जहाँ मैं ठहरा हुआ था) रास्ते भर इन्सानी ज़िन्दगी की हिमाक़तों पर ग़ौर करता रहा। हुस्न क्या है ? और इन्सान बदसूरती से भी ज्यादा हुस्न से क्यों प्रभावित होता है ? हसीन फूल जब मुरझा जाता है तो उसे आप पाँव तले क्यों रौंद देते हैं ? और क्यों एक औरत पाँच बच्चे जनने के बाद आप की तारीफ़ी निगाहों की हक़दार नहीं रहती ? यह क्यों कर होता है कि एक तनदुरुस्त किसान दिन भर ईमानदारी और सच्चे दिल से काम करता है और दिन भर ख़ुदा को याद करता हुआ भी अपने और अपने बाल

बच्चों के लिये रोटी कपड़ा नहीं मुहैया कर सकता। और दूसरी तरफ़ वह लोग भी हैं जो अपने गुनाहों और बदमाशियों का भारी बोझ उठाये हुए मैदानों की तपती हूई फ़िज़ाओं को छोड़ कर इस दिलफ़रेब घाटी में जन्नत के मज़े लूटने के लिये आजाते हैं और फिर इस बात का क्या प्रमाण है कि जिन लोगों ने इस दुनिया में ग़रीब की जन्नत हथिया ली वे अगली दुनिया में भी उसकी जन्नत नहीं छीन लेंगे ? क़िस्मत ? आवागमन ? इच्छा ? और फिर ये तो ज़िन्दगी की हिमाक़तें हैं। इनके बारे में कुछ सोचा ही क्यों जाय ? क्या यही काफ़ी नहीं की ज़नी हसीन है और उसका पति सोपुर गया हुआ है और कल हम उसके डोंगे पर सवार होकर दुल्लर देखने जा रहे हैं ?

जब मैं अपने निवास स्थान पर पहुँचा तो सभी मेरी राय से सहमत नज़र आते थे। गुरुबख़्श अपनी डाढ़ी को क्लिप लगाता हुआ बोला— "मैं भी चलूँगा।"

भैया लाल बोला—"मेरे ख़याल में आठ दस रोज़ तो गुज़र ही जायँगे। और आख़िर अब यहाँ श्रीनगर में रक्खा ही क्या है। क्यों सरफ़राज़ ?"

मैंने सर हिलाकर समर्थन किया।

महमूद बोला—"क्यों भाई मैं भी चलूँ ?"

अब रह गये इन्द्र और मित्तल। वह दोनों बाँध की तरफ़ सैर को गये हुए थे। जब वापस आये तो उन्हों ने भी यही उचित समझा कि कश्मीर आकर ज़िन्दगी की हिमाक़तों पर ग़ौर करना ख़द सबसे बड़ी हिमाक़त है और उसकी पूर्ति सिर्फ़ एक ही सूरत

में हो सकती है और वह यह कि वह भी दुल्लर की सैर में बाक़ी लोगों का साथ दें।

गुरु बख़्श ने कहा—"आज रात हम डोंगे में ही बितायेंगे। सारा असबाब ले चलो। हारमोनियम, तबला, ग्रामोफ़ोन, कैमरा दूरबीन, बिस्तर, मिठाई, अंडे, केक, फल और हाँ, मैं भूल गया था, तुम लोग अपने लिये हजामत का सामान भी लेते चलो। और हाँ, भाई सरफ़राज़ तुम वहाँ से उस कम बख़्त डोंगे वाले को भी बुला लाते। उसी से यह सामान उठवा कर ले जाने को कहते।"

कोई कमबख़्त आदमी उस डोंगे का मालिक-वालिक नहीं है" बल्कि उसकी मालिक तो एक लड़की है।"

"लड़की ?" सबने एकाएक चीख़ कर कहा।

"बरस पन्द्रह या कि सोलह का सिन !"

लेकिन उन्हों ने मुझे शेर पूरा न कहने दिया। दूसरा मिसरा ज़बान से अदा होने से पहले वे मुझ पर वहशियों की तरह पिल पड़े—"अबे गाउदी।"

"अबे लगड़-बगड़ या चर्ख़ ! उसका क्या नाम है ?"

"शक्ल कैसी है ?"

"बच्चा जी बताते हो या अपना गला दबवाओगे ?"

हमें श्रीनगर से चले हुए सात दिन हो चुके थे और अब हम इस दरियाई जीवन से बहुत मानूस हो चुके थे। दिन रात खाना पकाने और खाना खाने के सिवा और क्या काम हो सकता था। हाँ कभी-कभी ब्रिज खेलते और कभी कैरम। डोंगा अपनी धीमी चाल से जेहलम की सतह पर बहता जा रहा था।

महमूद अक्सर दूरबीन से उन दूर ऊँचे-ऊँचे पहाड़ी सिलसिलों की तरफ़ देखता रहता जिनकी चोटियाँ गर्मियों में भी बर्फ़ से ढकी दिखाई देती हैं। गुरु बख़्श हारमोनियम के पर्दे पर हाथ रक्खे अपने गले से सुरीली तानें निकालता और भैया लाल अपने दुबले पतले जिस्म और लम्बे क़द के साथ बार-बार डोंगे की छत को हाथ लगाकर हम छोटे क़द वालों की हँसी उड़ाकर अपनी शारीरिक कमज़ोरियों पर पर्दा डालने की नाकाम कोशिश करता.........और ज़ेनी ? लेकिन ज़ेनी के तो हम पुजारी थे। अगरचे मैं अपना हक़ सब से बढ़कर समझता हूँ और यह बात मैंने अपने साथियों पर अच्छी तरह ज़ाहिर कर दी थी। लेकिन जल्द ही हर एक को मालूम हो गया कि यह चिड़िया किसी के जाल में फँसने वाली नहीं है। उसकी अदायें दिल रुबा थी, उसके गीत दिलकश, उसकी मुस्कराहट मन मोहिनी। लेकिन उसे अपने पति से प्रेम था, उसे अपने पति पर नाज़ था, जो सोपुर में रोज़गार की तलाश में मसरूफ़ था। जब वह चप्पो चलाते-चलाते एकाएक हँस पड़ती तो यह हँसी हम में से किसी के लिये न होती। अज़ीज़ा के लिये भी नहीं, जो उसे इतना प्यारा था। फिर कभी चप्पो हाथ से छोड़कर सीधी खड़ी होकर अंगड़ाई लेती और पच्छिम की तरफ़ देखने लग जाती, जिधर सोपुर था। उस वक़्त गुरुबख़्श एक बेसुरे लहजे में चिल्ला उठता — "दिलदार कन्दाँ वाले दा......दिलदार !"

भैया लाल ने तो पहले दिन ही ज़ेनी को देखते ही कह दिया था—"अगर चे मैं सूरत शक्ल से तो बिलकुल मजनूँ हूँ लेकिन मुझे मालूम है कि यह लैला मुझसे मानूस नहीं होगी और यह लैला ही क्या, दुनिया की किसी भी लैला को मेरी चाह नहीं हो सकती इसलिये—ए मेरी पहाड़ी लैला !

कि सोपुर ज़रूर क़रीब आरहा था। कल दुल्लर और परसों सोपुर, और फिर शायद ज़ेनी की ये शोख़ अदायें हमें उम्र भर मयस्सर न आ सकेंगी। मैं किचन के दरवाज़े पर खड़ा होकर ज़ेनी की तरफ़ देखने लगा, जो डोंगे के किनारे पर बैठी हुई चप्पो से किश्ती का रुख़ ठीक कर रही थी। डोंगे के दूसरे सिरे पर कहीं अज़ीज़ा पसीने में तरबतर डांड चला रहा होगा। मैंने दिल में सोचा—बेचारा ग़रीब ग्यारह साल का लड़का। लेकिन पेट के लिये सब कुछ करना पड़ता है। किचन के पीछे जो कमरा था, वहाँ महमूद सोया पड़ा था और उसके हलके-हलके ख़र्राटों की आवाज़ मेरे कानों में पहुँच रही थी। कभी-कभी डाइन्ग रूम से हँसी की एक बुलन्द चीख़ सुनाई देती। इन्द्र ने ब्रिज खेलते वक़्त 'सफ़ाई' के काम लिया होगा।

ज़ेनी ने कहा—"साहब, कल हम दुल्लर पहुँच जायँगे।"

"क्या तुल्लर झील बहुत ख़ूबसूरत है ?"

ज़ेनी सर हिलाते हुए बोली—"जी साहब, जिधर नज़र उठाओ पानी ही पानी, तेरह चौदह मील तक, चारों तरफ़ नीला पानी और बीच में कहीं कहीं कँवल के लाखों फूल खिले हुए और श्री बटनाग......!"

"श्री बटनाग क्या ?"

"बटनाग दुल्लर का देवता है, दुल्लर का बादशाह है, वहाँ हरएक सैयाह (भ्रमणकारी) को, चाहे वह हिन्दू हो या मुसलमान, या अंगरेज़, कुछ नज़र देनी पड़ती है।"

"और अगर वह न दे ?"

"तो उसकी किश्ती डूब जाती है।"

"अच्छा......तो क्या दुल्लर झील बहुत सुन्दर होगी ?"

"साहब ख़ुद देख लेंगे।"

"तुम से भी ज़्यादा ख़ूबसूरत ?" मैंने जेनी के क़रीब जा कर कहा।

जेनी का चेहरा, जो पहले एक सेब के फूल की तरह था, अब एक गुलाब का फूल बन गया। उसने शर्मा कर अपना मुँह मोड़ लिया।

मैंने अपनी जेब से पाँच रुपये का एक नोट निकाला और जेनी के हाथ में दे दिया और जज़्बात भरी आवाज़ में कहा— "यह लो, इसे श्री बटनाग की नज़र कर देना।"

ज़ेनी चन्द लमहे ख़ामोश रही, फिर एक दम चप्पो छोड़ कर, तन कर खड़ी हो गई। उसने मेरी तरफ़ तेज़ निगाहों से देखा। गुलाब का फूल एक शोला बन गया था। उसने अपने हाथ में काँपते हुए नोट को ज़ोर से अपनी मुट्ठी में मसल डाला और फिर उसे तेज़ी से पानी में फेंक दिया। ज़ेनी के होंठ काँप रहे थे, उसकी आँखें नम हो गई थीं और बालों की एक लट दाहिने गाल पर उतर आई थी।

यह ज़ेनी की दूसरी तस्वीर है जो आज तक मेरी कल्पना में महफ़ूज़ है। मैं आज भी आँखें बन्द किये कल्पना की आँखों से उसे एक तेज़ शोले की तरह भड़क उठते देख सकता हूँ।'

मैं देर तक किचन के दरवाज़े के क़रीब खड़ा रहा। शर्मिन्दा और पशेमान। अपनी हार की ज़िन्दा तस्वीर। नोट चक्कर काटता हुआ पानी की सतह पर बह रहा था। आख़िर उसे एक मछली ने निगल लिया। धीरे धीरे आसमान के पच्छिमी हिस्से में ऊषा की लाल लहरें ग़ायब हो गईं और

रात की काली चादर पर तारों की बुनकियाँ चमकने लगीं। उन तारों की शोख़ हँसी जैसे मुझसे बार बार कह रही थी—क्यों, क्या तुम जेनी को भी एक मछली समझते थे? वह मछली जो तुम्हारे पाँच रुपये के नोट को एक बड़ी नेमत समझ कर चुपचाप निगल जाती। लेकिन वह पानी की मछली नहीं, आदम की औलाद है, उसे अपने भले बुरे की तमीज़ है। वह ग़रीब है तो क्या हुआ, वह तुम्हारे रुपयों की महुताज नहीं, तुम उसे नहीं ख़रीद सकते!

दूसरे दिन हम दुल्लर के किनारे पहुँच गये और हमने डोंगे को वहाँ बँधवाया, जहाँ जेहलम नदी दुल्लर झील में दाख़िल होती है......जहाँ तक निगाह जाती थी, समुन्द्र की तरह नीला पानी फैला हुआ था और दूर, बहुत दूर, चारों तरफ़ एक पहाड़ी सिलसिला एक नीली दीवार की तरह नज़र आ रहा था। मुर्ग़ाबियों के झुण्ड के झुण्ड झील के ऊपर उड़ रहे थे, चार पाँच किश्तियाँ झील की सतह पर बच्चों की नाव की तरह कमज़ोर और बेकस सी नज़र आ रही थीं। हवा रुकी हुई थी, नहीं तो अगर हवा ज़ोर की चल रही होती, तो इस झील में बीस फ़िट की लहर का पैदा होना मुश्किल न था। और फिर पानी की इन दीवारों के आगे किश्तियाँ कहाँ महफ़ूज़ रह सकती थीं।

लेकिन अगरचे हम सारे दिन एक किश्ती में बैठकर झील में घूमते रहे, हवा बिलकुल न चली और झील की सतह नीले रंग के शीशे की तरह बिलकुल स्वच्छ और निश्चेष्ट। हमने श्री बटनाग देखा। यह एक बहुत बड़ा भँवर था, झील की पच्छिमी दिशा में एक गोल दायरा बनाता हुआ घूम रहा था और बहुत भयानक था। लेकिन हमने किश्ती के मल्लाहों के

बहुत कहने पर भी दुल्लर के इस बेताज बादशाह को एक पैसा तक नज़र देना पसन्द न किया। और फिर हमने श्री बटनाग का एक वज़ीर भी देखा जो एक छोटा सा भँवर था और पहले भँवर से क़रीब चार पाँच मील की दूरी पर था। यहाँ अलबत्ता गुरुबख़्श ने, जो तैरना कम जानता था, एक दो नाशपातियाँ वज़ीर की नज़र कीं, जो न जाने कितने दिनों से भूखा था। क्योंकि मल्लाहों के कहने पर हमें मालूम हुआ कि आख़िरी दुर्घटना इससे दो महीने तीन अंग्रेजों को पेश आई थी वह इस झील में किश्ती चलाते चलाते उन तूफ़ानी लहरों का शिकार हो गये जो एकाएक एक तेज़ झक्कड़ के चलने से पैदा हो गई थीं।

तीसरे पहर के बाद जब हम झील की सैर से लौटे तो ज़ेनी और अज़ीज़ा दोनों को फूट फूट कर रोते हुए पाया। पूछने पर पता चला कि ज़ेनी का पति सोपुर से पंजाब चला गया है, रोज़गार की तालाश में। एक आदमी सोपुर से आया था, वह उधर से गुज़र रहा था और उससे पूछने पर यह सब हाल मालूम हुआ। हमने ज़ेनी और अज़ीज़ा को जहाँ तक हो सका, तसल्ली देने की कोशिश की। लेकिन उनके आँसू थमने में ही न आते थे। वह अपने आपको बिलकुल बे यार व मदद-गार पाते थे और बच्चों की तरह रोये जा रहे थे।

बड़ी देर तक मन उदास रहा। ये लोग कितने मूर्ख हैं? रोने से क्या होता है? और फिर क्या उस बेवक़ूफ़ कश्मीरी को उसके अपने देश में कोई काम नहीं मिल सकता था? पंजाब में उसे क्या क़ारून का ख़ज़ाना मिल जायगा? गधे, बेवक़ूफ़, ग़रीब! इनमें अक़्ल तो बिलकुल होती ही नहीं। बस बोझ उठाना जानते हैं, ख़च्चरों की तरह। इन्हें इन्सान समझना

ही हिमाक़त है। इनके साथ ख़च्चरों का सा ही सलूक करना चाहिये। ग़रीब लोग ग़रीब ही रहें तो ठीक तरह काम करते हैं। अगर उन्हें पेट भर कर खाना मिले तो अकड़ जाते हैं।...... ग़रज़ यह कि तबियत बहुत परेशान रही। हम सब लोग अपने आपको क़सूरवार समझ रहे थे और यह ख़याल हमेशा तकलीफ़ देह होता है। आख़िर खाना खाने के बाद भैयालाल के चुटकुलों से तबियत किसी क़दर बहली। गुरु बख़्श ने ग्रमोफ़ोन पर चन्द दिलकश रिकार्ड सुनाये और हमारी महफ़िल फिर ठट्ठों से गूँज उठी।

(३)

दस बजे के क़रीब जब ब्रिज शुरू हुआ तो मैं सर दर्द का बहाना करके उठ आया। दर असल मैं ब्रिज खेलना नहीं चाहता था। पहले मैं सोने के कमरे में गया, फिर मैंने किचन में जाकर एक गिलास पानी पिया, लेकिन तबियत में बेकली अब भी मौजूद थी। मैं किचन से होता हुआ बाहर डोंगे के खुले फ़र्श पर आ गया।

ज़ेनी हाथ में चप्पू लिये हुए झील के नीले पानी की तरफ़ देख रही थी। वह डोंगे के किनारे बैठी थी और उसके पैरों के पास अज़ीज़ा लेटा हुआ था, नहीं वह रो रोकर सो गया था। उसकी पलकों पर आँसू अभी तक चमक रहे थे। उसके लबों से अब भी कभी-कभी कोई सीने में दबी हुई सिसकी निकल जाती थी।

और ज़ेनी? .. वह क्या सोच रही थी?......क्या उसकी नज़र झील के फैलाव से परे पंजाब के मैदानों तक पहुँच रही थी, जहाँ, उस ज़ालिम परदेश में शायद किसी

लकड़ी और कोयले की दूकान के आगे उसका पति लेटा हुआ था, दिन भर की मेहनत मशक़्क़त से चूर—एक थके हुए खच्चर की तरह हाँप रहा था। जेंनी का चेहरा उदास था। उसकी आँखें जैसे शून्य में कुछ देख रही हों।

"जेनी!" मैंने आहिस्ता से कहा!

वह ख़ामोश बैठी रही।

"मुझे बहुत अफसोस है जेनी!"

जेनी का सीना जोर से हरकत करने लगा।

'जेनी तुम घबराओ नहीं।" मैंने आहिस्ता से कहा।

"साहब, अब हम क्या करेंगे?" जेनी ने रुंधे हुए लहजे में कहा—"अब हमारा इस दुनिया में कोई नहीं......एक शौहर था, वह परदेश चला गया।"

"अज़ीज़ा छोटा सा बच्चा है......।"

"मैं औरत जात हूँ .....।"

"हाय,अब क्या होगा?"

जेनी की सिसकियाँ तेज़ होती गईं, मैं उसके क़रीब जा खड़ा हुआ और उसका हाथ अपने हाथ में लेकर बोला—"क्यों घबराती हो जेनी तुम्हारा आदमी परदेस से जरूर वापस आ जायगा। और ..."

जेनी ने रोते हुए कहा— 'साहब, मैं मर जाऊँगी और छोटा अज़ीज़ा भी भूकों मर जायगा। हाय, उसने हमें धोका दिया!"

"मत घबराओ जेनी! मैं तुम्हारे लिये ...मेरा मतलब है, मैं तुम्हारी हर तरह मदद करने को तैयार हूँ। हाँ, तुम रोती

क्यों हो। मेरी अच्छी ज़ेनी! मुझे तुमसे बेहद मुहब्बत है, बेहद मुहब्बत। मैं तुम्हारे लिये सब कुछ करने को तैयार हूँ...... ।"

यह कहते हुए मैंने उसके हाथ में पाँच रुपये का नोट थमा दिया। जैसे चिराग़ बुझने से पहले शोले की एक ऊँची लपक पैदा होती है, इसी तरह ज़ेनी की आँखों में वही पुरानी चमक पैदा हुई। लेकिन फिर फ़ौरन बुझ गई। तेल ख़तम हो चुका था। और फिर ग़रीबों के पास पूँजी होती ही कहाँ है। ज़ेनी एक टूटी हुई बेल की तरह मेरी गोद में गिर पड़ी और उसने अपने आँसुओं से तर चेहरे को मेरे बाज़ुओं में छिपा लिया ..... वह ज़ोर जोर से हिचकियाँ लेने लगी।

चाँद का रंग फीका पड़ गया था। सितारे शर्मिन्दे थे। वे जेहलम की सितह पर बासी फूलों की तरह दिखाई दे रहे थे। हवा कँवल के पत्तों के क़रीब से गुज़रती हुई आहें भर रही थी। सृष्टि का हर एक ज़र्रा सर झुकाकर उदास लहजे में कह रहा था—तुमने हमें ख़रीद लिया!

सिर्फ़ ड्राइंग रूम से गुरु बख़्श के गाने की ऊँची आवाज़ सुनाई दे रही थी। वह झूम-झूम कर गा रहा था—

अगर फ़िरदौस बर रूए ज़मीन असस्त
हमीन अस्तो हमीन अस्तो हमीन अस्त

(अगर ज़मीन पर जन्नत है तो यहीं है, यहीं है, यहीं है।)

पिण्डारे

यमुना सागरा में रहती थी। सागरा ब्राह्मणों का गाँव था और सहस्त्रों वर्षों से चला आता था। कश्मीर की हज़ारों छोटी-छोटी पहाड़ियों में यह भी एक छोटी से पहाड़ी में स्थित था। इसके क्षेत्रफल में केवल दो दिशाएँ पाई जाती थीं, उत्तर पूर्व और दक्षिण-पूर्व। दोनों दिशाओं में ऊँचे-ऊँचे पहाड़ खड़े थे जो एक तंग अण्डाकार दायरा बनाते हुए फिर आपस में मिल गये थे। सूर्य प्रतिदिन एक पहाड़ से निकलता और दूसरे पहाड़ में डूब जाता। पहाड़ी के ऊपर उस तंग अण्डाकार आकाश में सूर्य की हरकत एक छोटी-सी आड़ी लकीर के समान थी। और यह आड़ी लकीर हमेशा बदलती रहती। सागरा के ब्राह्मण इस आड़ी लकीर को देखकर ऋतु-परिवर्तन का अनुमान लगाया करते। गर्मियों में इस आड़ी लकीर का पहला सिरा बिलकुल

पहाड़ी नाले के मुँह पर चला जाता था । और दूसरा उस बिन्दु पर जहाँ पहाड़ी नाला दोनों पहाड़ों की सिमटी हुई सीमाओं के बीच में से गु.जरता हुआ मालूम होता था। उन दिनों मक्की की फ़सिल बोई जाती थी और मक्की के खेत के किनारे-किनारे कुड़म का साग और मिर्चों के पौधे। नाले के किनारे खेतों में पान हमेशा रहता था इसलिये यहाँ धान बोया जाता था। कभी-कभी नालें में वर्षा का पानी बड़े .जोरों पर आ जाता था और धान का एकाध खेत बह जाता था। लेकिन जब जाड़ों में नाला सिकुड़ता हुआ दक्षिण-पश्चिम पहाड़ के पाँव से लग जाता था उस समय सागरा के ब्राह्मण नाले से अपना खेत वापस ले लेते थे और अगले साल के धान के लिये एकाध क्यारी और भी बना लेते थे। इस तरह करते-करते उन्होंने पहाड़ी नाले को क़रीब-क़रीब विवश कर दिया था कि वह सदा दक्षिण-पश्चिम पहाड़ के पाँव से लग कर बहा करे। क़रीब-क़रीब इसलिये कि सागरा का नाला कभी-कभी मौक़ा पाकर ब्रह्मणों की आज्ञा का उल्लंघन कर दिया करता था और ब्राह्मण उसे कोई दण्ड न दे सकते थे।

सागरा में दिन कम आते थे और रातें अधिक। उज्ज्वल प्रकाश और चमकती हुई धूप कम मिलती। दिन को अक्सर एक धुँधली-सी सफ़ेदी छाई रहती और रात को गहरा अंधकार, जिसमें कहीं-कहीं तारे जलते हुए अंगारों की तरह सुलगते। और जाड़े तो बहुधा एक लम्बी रात के समान होते थे जिसमें बादल घिरे रहते, बर्फ़ीली हवाएँ चलतीं और कभी-कभी बिजली कौंध-कौंध जाती। सागरा की दो दिशाएँ थीं और दो ही ऋतुएँ। गर्मी और सर्दी। या एक छोटा-सा बसन्त और एक लम्बी-सी पतझड़। और फ़सलें भी दो ही थीं। मकई और धान। लम्बे से पतझड़ में तो सागरा के ब्राह्मण नीचे प्रदेश में नौकरी की खोज

में चले जाते थे जहाँ वे अक्सर रसोइये की जगह रख लिये जाते या किसी दूर की मण्डी से नमक लाने के लिये रवाना हो जाते। या घर पर बैठ कर सूत और कपड़ा बनाते। स्त्रियाँ चर्खों पर घों-घों के साथ गा-गाकर सूत की अंटियाँ और पुरुष कच्चे घरों के लिपे हुए आँगनों में लकड़ी की कीलें ठोंक कर सूत के ताने-बाने से अपने पहिनने के लिये कपड़ा तैयार करते। चादरें, लिहाफ़, मोटा खद्दर और अपनी नौजवान बहुओं, बहिनों, और पत्नियों के लिये सूत और ऊन को मिला कर एक बढ़िया महीन-सा कपड़ा तैयार करते जिस पर स्त्रियाँ लाल तागों से भद्दे और बेढंगे फूल काढ़ लेतीं।

सागरा के गाँव में मुश्किल से एक सौ घर होंगे। उन एक सौ घरों का शासन गाँव के सब से बूढ़े ब्राह्मण के सुपुर्द था। वह गाँव का नम्बरदार भी था और धर्म-गुरु भी। और गाँव से बाहर 'बड़ी सरकार' के सामने गाँव वालों की भलाई-बुराई का ज़िम्मेदार, उसका स्थायी प्रतिनिधि। इस गाँव में तो हमेशा, हज़ारों वर्षों से, बड़े-बूढ़े ब्राह्मण धर्म-गुरु और नम्बरदार का शासन चला आता था। हाँ, इस गाँव के बाहर बहुतों का राज्य आया और चला गया। आर्य, मंगोल, तातारी, तिब्बती, नैपाली, चीनी, मुग़ल, सिख, और अब डोगरा सरकार का शासन था। डोगरा सरकार के राज्य-संस्थापक गुलाब सिंह ने उसे मुसलमान सम्राटों के कमज़ोर होते हुए हाथों से छीन लिया था और अन्त में एक दिन बड़ी अंग्रेज सरकार ने डेढ़ करोड़ रुपया लेकर काश्मीर पर डोगरा सरकार का अधिकार मान कर अपनी स्वीकृति की मोहर लगा दी थी। लेकिन इन बाहर की बदलती हुई सरकारों ने सागरा के गाँव वालों को न कोई लाभ पहुँचाया था और न कोई विशेष हानि। सैकड़ों वर्षों से वे अपनी फ़सिल का एक तिहाई या चौथाई अदा करते आये थे। लगान हो या अन्न, एक ही

बात थी। चौकीदारी और जंगल का कर तथा पटवारी और रास्ते का खर्च सब उनके ज़िम्मे था। कभी-कभी मालिक बेगार भी ले लेता था। क्योंकि जो मालिक है वह बेगार ज़रूर लेगा और फिर यद्यपि वर्ष में एक ही फ़सिल होती थी लेकिन अगर तीन या चार होतीं तो भी इस तख़मीने में कैसे अन्तर पड़ सकता था। यही बहुत था कि खाने को दो वक्त रोटी मिल जाती थी और पहिनने को कपड़ा। और यदि रोटी-कपड़े की तंगी पेश आ जाती तो वे भगवान की कृपा से परदेश जाकर नौकरी कर सकते थे भोजन बना सकते थे और यदि भोजन बनाना न जानते थे तो जूठे बरतन साफ़ कर सकते थे और दो तीन रुपयों के बदले में पुरुष 'अन्ना' बन सकते थे। वे अपने भाग्य पर न संतुष्ट थे, न असंतुष्ट—वे सहस्रों वर्ष से एक ही डगर पर जा रहे थे। उन्हें इस बात का अनुभव ही न हुआ था कि उनका भाग्य अच्छा है या बुरा। क्योंकि उन्होंने, उनके पुरखों ने, उनके पुरखों के पुरखों ने कभी कोई और भाग्य देखा ही नहीं था।

इस गाँव में यमुना रहती थी। यमुना का पति खेती-बाड़ी भी करता था और दूकान का काम भी। सारे गाँव में केवल यही एक दूकान थी और सागरा की छोटी सी पहाड़ी में नदी के दक्षिण-पश्चिमी सिरे पर स्थित थी जहाँ से एक पगडंडी बाहर से आती हुई सागरा के गाँव के निकट से नाले के साथ-साथ गुज़रती हुई ऊपर उत्तर-पूर्वी पहाड़ियों में चली जाती थी। इस पगडंडी के द्वारा सागरा का सम्बन्ध बाहर के संसार से जुड़ता था। और इसी पगडंडी पर यमुना के स्वर्गीय पति की दूकान थी। वह एक दिन पहाड़ी नाले को पार करने की कोशिश में बह गया था और नाले की बाढ़ और बड़ी-बड़ी चट्टानों के नुकीले कोनों ने, जो पानी में छिपे हुए थे, उसकी

खोपड़ी के टुकड़े-टुकड़े कर दिये थे, उसके पाँव की हड्डियों को तोड़ दिया था, उसके हाथों की अँगुलियों को ओखली में साफ़ किये धान की भाँति छील दिया था। भगवान को इच्छा थी कि उस दीन ब्राह्मण की मृत्यु इस प्रकार हो, या उसके पिछले कर्मों का फल था, या उसकी युवती विधवा के अशुभ ग्रहों का, या उसके नन्हे से लड़के का जिसकी आयु अभी केवल एक वर्ष थी। यमुना अपने पति के मरने पर सती न हुई थी, वह बहुत चीखी-चिल्लाई भी न थी। पति के मर जाने से अधिक उसे अपने विधवा हो जाने का दुःख था। वह अब फूल से कढ़े हुए कपड़े न पहिन सकेगी चाँदी की बालियाँ, बाँहों के कड़े और कानों के दो झुमके उसे उतारने होंगे। उसकी रगों में यौवन की मस्ती का खून दौड़ रहा था। लेकिन अचानक उसे अनुभव हुआ कि मानो किसी ने उसका गला दबा दिया हो और वह अन्दर ही अन्दर घुट कर रह गई। यह सोच कर कि अब कोई उसके नर्म और भरे हुए शरीर को अपनी छाती से न लगा सकेगा, इसके पतले और लाल अधरों और लम्बी सुरमई पलकों की कतार को न चूम सकेगा, वह व्याकुल हो गई थी। उसे अपने पति पर बहुत क्रोध आया था और उसने शिव जी के पुराने मन्दिर में जाकर अपने आपको द्वार पर गिरा दिया था और गिड़गिड़ाकर भगवान शिव जी से पूछा था कि उसके ऊपर ऐसा अत्याचार क्यों हुआ? लेकिन शिव जी ने उसके सवाल का कोई जवाब न दिया था। या शायद वह शिव जी का जवाब समझने में असफल रही थी। कुछ भी हो, उस समय भगवान के जवाब से यमुना को संतोष न हुआ था। अन्त में बूढ़े ब्राह्मण के समझने पर यमुना का क्रोध शान्त हुआ। धीरे-धीरे केवल

जीवित रहने की स्वाभाविक इच्छा उसकी दूसरी भावनाओं पर छा गई। उसने अपने पति की दूकान सँभाल ली और खेती-बारी का काम एक और ब्रह्मण को सौंप दिया। गाँव के नम्बरदार और दूसरे बड़े बूढ़ों ने यमुना को बहुत समझाया कि वह दूकान भी किसी और व्यक्ति को सौंप दे और स्वयं शिव जी के मन्दिर में बैठ कर भगवान को याद करे। वे खुद उसके लड़के की देख-भाल कर लेंगे वैसे भी तो एक ब्राह्मण स्त्री का दूकान पर बैठना बुरा होता है। और फिर जब वह स्त्री युवती विधवा हो और यमुना जैसी सुन्दरी। लेकिन अभागिन यमुना ने एक न मानी। उसने दूकान का काम बड़े अच्छे ढंग से शुरू किया। वह यात्रियों से बड़ा अच्छा व्यवहार करती थी और ग्राहकों का सदा मुस्करा कर सौदा देती थी। उसके पति को मरे हुए एक वर्ष हो गया था और अब उसका जीवन एक हिन्दू विधवा के जीवन की तरह दुखपूर्ण और उदास नहीं था। अवश्य ही यह बात गाँव के बहुत से बड़े-बूढ़ों को पसन्द न थी परन्तु यमुना को इसकी परवाह नहीं थी। उसका लड़का अब दो वर्ष का हो गया था और अब वही उसके जीवन का केन्द्र था। वह प्रातः और संध्या मन्दिर में पूजा करने जाती और देवता से अपने प्यारे पुत्र के जीवन और स्वास्थ्य का वरदान माँगती। अब उसके मन को एक संतोष सा हो गया था। उखड़े-उखड़े क़दम जम गये थे। सिर्फ़ उस समय दिल में एक हल्की सी चुभन, एक हल्की सी वेदना रह-रह कर जाग उठती थी, जब कभी यात्री उसे तरसती निगाहों से देखते थे। उस समय गालों की रंगत लाल हो जाती और साँस तीव्र गति से चलने लगती, और वह अपने समस्त शरीर में एक सनसनी सी महसूस करती। यही सनसनी उसे सर्दी की सुनसान रातों के अँधियारे में महसूस होती, जब उसे अपने पति का प्रेम

याद आता। और वह एक लम्बी साँस लेकर अपने सोते हुए बच्चे के नन्हे-नन्हे हाथ अपनी छातियों पर फैला लेती और उसका मुँह जोर-जोर से चूमने लगती। यहाँ तक कि सोया हुआ बच्चा जाग कर रोने लगता। ये क्षण बहुत कष्टदायक होते थे। लेकिन यमुना को पूर्ण विश्वास था कि वह बहुत थोड़े समय में उन पर विजय पा लेगी और यह सम्भव था कि समय बीतने पर जब यौवन का बहाव मद्धिम हो जाय तो यह तीव्र काम-वेदना भी हमेशा के लिये दब जाय।

लेकिन इन्हीं दिनों इलाके के तहसीलदार साहब ने अपने दौरे के लिये सागरा का गाँव चुना।

सागरा में तहसीलदार का दौरे पर आना ग्रामनिवासियों के लिये एक अचंभे की बात थी। क्योंकि इस जगह अफ़सर लोग बहुत कम दौरे पर आते थे। अक्सर वर्षों बीत जाते और गाँव वालों को अपने हाकिमों की सूरत तक देखने को न मिलती थी। वैसे भी उन्हें अपने मालिकों से कोई विशेष प्रेम न था और वे यही अच्छा समझते थे कि उन्हें अलग-अलग रहने दिया जाय। वे अपने ब्राह्मण और बड़ी सरकार की आज्ञाओं का पालन करते रहेंगे। और फिर यह तो उनका सौभाग्य ही था कि सागरा एक ऐसी तुद्र सी घाटी में स्थित था जहाँ किसी अफ़सर का दिल आने को न चाहता था। तंग सी घाटी, बेढंगे से पहाड़, उनके नीचे देवदारों के घने जंगल और देवदारों के नीचे चीड़ और दयार और उनके नीचे चन्द खेती, चारगाहें, गाँव, धान के खेत और सब से नीचे पहाड़ी-नाला एक चोर की तरह उस घाटी में से निकलता।

हुआ मालूम होता था। ब्राह्मणों के गाँव में क़त्ल या ख़ून कहाँ? इसलिये सैकड़ों वर्षों से यहाँ किसी ने पुलिस के आदमी की शक्ल भी न देखी थी। जलवायु की दृष्टि से भी यह जगह बहुत निराशाजनक थी। ज़मीनों के झगड़े यहाँ ब्राह्मण पंच आपस ही में तय कर लेते थे। यानी अफ़सर लोगों के मनोरंजन का कोई सामान न था। ऐसी स्थित में तहसीलदार का दौरे पर आना अवश्य ही आश्चर्यजनक बात थी। तहसीलदार एक गठीला सजीला सुन्दर युवक था। चौड़ी छाती, मज़बूत ठुड्डी और छोटी-छोटी सुन्दर सी मूछें। जब यमुना ने उसे दूकान के सामने से घोड़े पर सवार निकलते हुए देखा तो दंग रह गई। सागरा के ब्राह्मण तो उसके सामने मरियल टट्टू से दिखाई देते थे। तहसीलदार ने एक खाकी रंग की बिर्जिस पहिन रक्खी थी, सिर पर खाकी फ़ेल्ट हैट था और हाथ में बेत की छड़ी, जिसके सिर पर एक चमड़े का फूँदना लगा हुआ। था। उसकी हर बात विचित्र थी और जब उसने यमुना की ओर नज़र फेर कर देखा था तो यमुना के शरीर का रोआँ-रोआँ काँपने लगा था। वह उस समय तराज़ू में मिश्री तौलकर एक मुसाफ़िर को दे रही थी। और वह तराज़ू कुछ क्षणों के लिये एक तरफ़ लटकती हुई रह गई थी।

दिन भर तहसीलदार साहब ने चीड़ों के एक पतले झुण्ड के नीचे अपना दरबार लगाया। वह खुद एक बेत की कुरसी पर बैठे और गिर्दावर क़ानूनगो, मुंशी और मुसद्दी उनके पाँव के पास ज़मीन पर। इस तरह हाकिमों के दरबार में सागरा की जनता की पेशी हुई। बेचारे ब्राह्मण डरे-मरे जा रहे थे। जिस तरह हर व्यक्ति भगवान से डरता है और जा-बेजा उसकी ख़ुशामद और चापलूसी पर तुला रहता है उसी तरह

वह अकारण गुरु की घुड़की से डरे हुए बालकों की भाँति तहसीलदार के सामने हाथ बाँधे खड़े थे और मुंशियों तथा मुसद्दियों की खुशामद कर रहे थे।

मुंशी अब्दुलरहमान ने मौलवियाना दाढ़ी पर हाथ फेरते हुए कहा—"अबे हरामज़ादो! वे घास के गट्ठे अभी तक नहीं पहुँचे?"

राजाराम ब्राह्मण हाथ जोड़ कर बोला—"सरकार, मैं खुद अभी चार गट्ठे नई घास के बाँध कर लाया हूँ।"

मुंशी अब्दुलरहमान ने गरजकर कहा—"सरकार के बच्चे! चार गट्ठों से क्या होता है।" फिर तहसीलदार साहब की ओर मुड़कर बोला—"सरकार, बरसों से किसी अफ़सर ने इस इलाक़े का दौरा नहीं किया। अब इसका नतीजा देखिये, हुज़ूर के तशरीफ़ लाने पर घास के सिर्फ़ चार गट्ठे पेश किये जाते हैं। और मुर्ग़ी एक भी नहीं। यहाँ के लोग कितने सरकश हो गये हैं।"

नम्बरदार ने डरते-डरते कहा—"हुज़ूर मुंशी साहब, यह ब्राह्मणों का गाँव है। यहाँ हम लोग न मुर्गियाँ पालते हैं न खाते हैं, और कोई दूसरा गाँव पास नहीं।"

घसीटे राम पेशकार ने चिल्लाकर कहा—"यह कुत्ता ब्राह्मण क्या बकवास करता है, बाँध दो इसे पेड़ से; और लगाओ कोड़े ताकि इसे अफ़सरों के सामने बात करने का ढंग आ जाय।"

वृद्ध ब्राह्मण काँपने लगा। तहसीलदार साहब अपनी छोटी-छोटी सुन्दर मूछों को ताव देते हुए हँसने लगे बोले—"नहीं-नहीं, यह बेचारा सच कहता है। अच्छा, तुम यहाँ के नम्बरदार हो न?"

"जी !"

"क्या नाम है तुम्हारा ?"

"सत्य नारायण, हुजूर ।"

तहसीलदार साहब फिर मुस्करा दिये ।—"तुम बहुत अच्छे आदमी हो सत्यनारायण । अच्छा अब यह बताओ कि आज रात को हमारा कैम्प कहाँ लगेगा ?"

नम्बरदार ने फ़ौरन जवाब दिया—"जो जगह हुजूर पसन्द करें वहीं..."

तहसीलदार साहब कुछ देर सोचते रहे फिर बोले—"मेरे विचार में उस बड़ी दूकान की छत अच्छी रहेगी। वह दूकान जो हमने पीछे रास्ते में देखी थी।"

सत्यनारायण बोला—"हुजूर वह यमुना विधवा की दूकान है।"

"हाँ हाँ, वही—अच्छा—वह—यमुना विधवा की दूकान है—यमुना ?"

"हाँ हुजूर, वह बेचारी विधवा है। पार साल उसका पति रामभरोसे उस नाले में बह गया था..."

तहसीलदार साहब ने जरा सा रुकने के बाद कहा—"हाँ-हाँ तो फिर वही जगह ठीक है, क्यों पेशकार साहब ?"

पेशकार साहब ने हाथ बाँध कर जवाब दिया—"ठीक है हुजूर ! खुली जगह है, फैली हुई छत है, गाँव से बाहर भी है और खुली हवा भी है।"

सत्यनारायण बोला—"जैसी हुजूर की मर्जी, लेकिन अगर हुजूर चाहें तो मेरे मकान की छत पर अपना खेमा लगवा लें, वह छत इससे भी ज्यादा खुली और फैली है।"

पेशकार बोला—"नहीं नहीं, वही जगह ठीक रहेगी।"

और मुंशी अब्दुलरहमान ने एक आँख मींच कर धीरे से पेशकार के कान में कहा—"मैं इस लौंडे के मज़ाक़ की दाद देता हूँ। कम्बख़्त ने कैसी हसीन मुर्गी तलाश की है!" और यह कहकर अपनी घनी दाढ़ी के दो बालों को मसलने लगे।

यमुना ने वह रात सत्यनारायण नम्बरदार के घर बिताई। दूसरे दिन वह दूकान पर भी न गई। तीसरे दिन तहसीलदार साहब का खेमा पूर्ववत उसकी दूकान की छत पर लगा हुआ था। इस तरह एक दो दिन और बीत गये और तहसीलदार साहब को शायद सागरा इतना पसन्द आया था कि वे उस गाँव से हिलने का नाम तक न लेते थे। दिन भर देवदार के जङ्गलों में शिकार करते, रीछ और सुअर मारते या जङ्गली कबूतर, और शाम को अपना दरबार लगाते, जहाँ गाँव वालों की पेशी होती थी और गाँव के लगान व माफ़ी के सम्बन्ध में खोज की जाती थी और खुचड़ निकाली जाती थी। तहसीलदार साहब का अन्दाज़ा था कि इस गाँव का लगान बढ़ना चाहिये। वे विचार कर रहे थे कि इस गाँव के ब्राह्मण बहुत बदमाश हैं और जङ्गल में बहुत चोरी करते हैं, बिना इजाज़त लकड़ियाँ काटते हैं, बनफ़शा उखाड़ लाते हैं और अनारदाना तैयार करते हैं। वह अवश्य जङ्गल-विभाग को लिखेंगे कि ये बातें बन्द होनी चाहियें, और फिर यहाँ गाँव वालों ने बहुत सी सरकारी ज़मीन काश्त कर ली थी और अब पटवारी उन सब व्यक्तियों को छः महीने के लिये जेल में भेज देंगे और उनकी ज़मीनें और घर नीलाम कर लेंगे, और फिर इस हरामज़ादे नम्बरदार ने पिछले वर्ष का बक़ाया लगान अभी तक अदा नहीं किया था। उन्हें बहुत सन्देह था कि वह हर

पिछले वर्षों में लगान अदा करता रहा था या नहीं। और गिर्दावर क़ानूनगो और पटवारी उचित जाँच के बाद तहसीलदार साहब के सामने रिपोर्ट पेश करेंगे और तहसीलदार साहब ने निश्चय कर लिया था कि नम्बरदार को निकाल दिया जाय और उसे ढाई बर्ष के लिये जेल में ठूँस दिया जाय। इन सब बातों को रखते हुए और पेशकार साहब की कृपा पूर्ण और मित्रता पूर्ण राय मशविरे के साथ सागरा के ब्राह्मणों ने गाँव की तीन नई बहुएँ—रामदयी, दुलारी और खेतरी—को इन धरती के देवताओं को नजराने में पेश कीं। क्योंकि मनुष्य को अपनी लाज से अधिक जान प्यारी होती है, और ग़रीब किसानों का जीवन, चाहे वे ब्राह्मण ही क्यों न हों, इसी धरती पर निर्भर है जिसे जोत-बोकर वे अपना पेट पालते हैं। और जब यह ज़मीन ही कुर्क़ हो गई या मालिकों ने अपनी ज़मीन वापस लेली तो वे ग़रीब लोग क्या कर सकते हैं। पेट की मजबूरी सब कुछ करा देती है, लेकिन यमुना के हृदय में न जाने किसी ने क्या पत्थर के टुकड़े भर दिये थे। वह अभागिन एक ही हठ पर अड़ी थी कि वह भूखी मर जायगी, चाहे उसकी ज़मीन क़ुर्क़ हो जाय, चाहे उसकी दूकान ज़ब्त कर ली जाय लेकिन वह तहसीलदार के पास न जायगी, कभी न जायगी, कभी न जायगी। उसे अपने मृत पति की सौगन्ध, अपने नन्हे बेटे की क़सम।

लेकिन यमुना की यह हठ गाँव वालों के लिये हानिकारक थी। अब तो गाँव के एक-दो बूढ़े ब्राह्मणों का अपमान भी किया जा चुका था। उनकी सफ़ेद दाढ़ी को नोचा गया था और उनकी गाढ़े की मोटी-मोटी पगड़ियाँ उतार कर उनकी चाँदों पर इतनी धौलें लगाई गई थीं कि उनकी आँखों में आँसू आ गये थे। और यह सब कुछ लगान और जल-कर और सरकारी ज़मीन

पर ख़िलाफ़ क़ानून क़ब्ज़ा जमाने के विषय में हुआ। रामदयी, दुलारी और खेतरी के बलिदान के बाद भी धरती के देवताओं की भूख न मिटी थी। यों तो तहसीलदार साहब अपने मुँह से कुछ न कहते थे, लेकिन देवताओं को कब किसी ने बोलते देखा है। वे मौन रहते हैं लेकिन पुजारी जानता है कि उसके इष्टदेव को किस चीज़ की भेंट चाहिये! सागरा के निवासी भी जानते थे लेकिन वे अत्यन्त परीशान थे कि क्या करें क्या न करें। अपने घर की लड़की, बहिन या बहू होती तो उसे किसी तरह राज़ी कर लेते, लेकिन यमुना, विधवा यमुना तो एक ही नीच स्त्री थी। न वह दूकान पर निर्लज्ज और निस्संकोच हो कर पुरुषों की तरह काम करती न आज यह नौबत आती। यह सब विपद उसी के कारण आई थी और यह आग उसी ने लगाई थी। घास के गट्ठे पहुँचाते-पहुँचाते, दूसरे गाँवों से अण्डे और मुर्गियाँ लाते-लाते, तथा मक्खन, आटा और बासमती के क़ीमती और सुगन्धित चावल देते-देते वे बेचारे ब्राह्मण बहुत तंग आ गये थे और दिन-रात सोचते थे कि यमुना को किस प्रकार मनाया जाय। रामदयी, दुलारी और खेतरी ने उसके आगे अपने दुखों का रोना रोया और बताया कि किसी प्रकार उसके लिये—केवल उसके लिए उनका सतीत्व नष्ट किया गया। और अब भी वह गाँव वालों को बेशर्मी, बेइज़्ज़ती और बेहयाई से बचा सकती थी अगर वह—अगर वह—मान जाय। फिर इस विपद के समय अगर वह गाँव वालों के काम न आयेगी तो कब आयेगी। क्या वह इतना त्याग भी न कर सकती थी? और उसे फिर ताना देने वाला कौन था? वह तो एक विधवा ही थी।

यमुना ने झल्ला कर कहा—"हाँ-हाँ, मैं विधवा हूँ, इसीलिये तो तुम मुझे अपना स्वार्थ सिद्ध करने का साधन बनाना

चाहती हो। अगर आज मेरा पति जीवित होता तो तुम्हारी तरह बातें करने वालियों की ज़बान खींच लेता और तुम्हारी चोटी पकड़ कर इस तरह घसीटता कि तुम्हारे ये मोम से चमकते हुए सिर एक घड़ी में गंजे हो जाते। कलमुँहियाँ अपनी लाज बेच कर अब मुझसे सौदा करने आई हैं!"

और खेतरी ने क्रोध में चिल्ला कर कहा—"यह आज तुम बातें कर रही हो, मैं कहती हूँ कि अगर तुम्हारा पति जीवित होता तो वह तुम्हें चोटी से पकड़ कर खुद उस मुए तहसीलदार के पास ले जाता। इसी तरह जैसे कि हमारे पति—।" और खेतरी आगे कुछ न कह सकी। दुख और उसकी आँखों में आँसू भर आये। उसे रोते देख रामदई और दुलारी भी रोने लगीं। और फिर यमुना भी।

दूसरे दिन यमुना का मन डाँवाडोल हो रहा था। वह जाय या न जाय? एक ओर कुआँ, दूसरी ओर खाई। वह स्वयं देख रही थी कि गाँव के बड़े-बूढ़े का किस तरह अपमान किया जा रहा था। उसे इस बात का भी भय था कि लगान बढ़ जायगा और गाँव वाले आजीवन उसे कोसेंगे। बहुतों को सज़ा होगी, और वे जेल की हवा खायँगे। जेल? उसके मन में आया कि वह आत्म-हत्या करले। फिर तो गाँव वालों का इस मुसीबत से छुटकारा हो जायगा। लेकिन उसका एक नन्हा सा लड़का था। और स्वयं वह मरना नहीं चाहती थी। यह विचार एक क्षण के लिये उसे आया और दूसरे क्षण उसने इसे त्याग दिया। आखिर होगा क्या? क्या वह गाँव वालों के लिये यह त्याग नहीं कर सकती थी? यह एक त्याग ही तो था जैसा कि गाँव के बूढ़े नम्बरदार ने उसे बताया था। और धर्मशास्त्रों में उसने पढ़ा था, ऐसा त्याग उचित समझा जाता है। यह अवश्य ही पाप न

होगा। वृद्ध नम्बरदार ने अपनी पगड़ी उतार कर यमुना के पाँव में रख दी थी और उससे करुण स्वर में निवेदन किया था कि गाँव को इस संकट से बचा ले। तहसील वालों के अत्याचार प्रति दिन बढ़ते जा रहे थे। और अगर यही हाल रहा तो चन्द दिनों में इस गाँव को घास का एक तिनका न मिलेगा और उनके ढोर-डंगर सर्दी में भूखे मर जायँगे। विचित्र परिस्थिति थी। इस कष्ट से छुटकारे का एक ही मार्ग था। क्या वह अपने पूज्य गुरुजनों की प्रार्थना ठुकरा देगी ?

यमुना ये बातें सुनकर चुप हो गई। उसने चादर से अपनी आँखों के आँसू पोंछ डाले और ज़मीन से घास के तिनके तोड़ने लगी।

दूसरे दिन तहसीलदार साहब सागरा से विदा हो गये! वे बूढ़े नम्बरदार से बड़े प्रेम से मिले और उन्होंने वचन दिया कि न तो वे लगान बढ़ायेंगे और न किसी को जेल की हवा खिलायेंगे बल्कि वे बूढ़े नम्बरदार के लिये ज़िलेदारी की सिफ़ारिश करेंगे। एकाएक उन्हें अनुभव हुआ कि इस गाँव के निवासी बहुत भले, सभ्य आतिथ्य-सत्कार करने वाले और सरकार के वफ़ादार थे। और वे बड़े हाकिमों का ध्यान इस ओर आकर्षित करेंगे। मुंशी अब्दुलरहमान और पेशकार घसीटा राम भी बहुत ख़ुश थे। गाँव के पंचों ने उनकी मुट्ठी भी गर्म कर दी थी। तहसील वाले भी ख़ुश थे और तहसील के जानवर भी जिन्हें ताज़ी घास और नई मक्की के दाने प्रति दिन खिलाये गये थे। जब तहसील वालों का क़ाफ़ला गाँव से चला तो कई मन बासमती के सुगन्धित चावल खच्चड़ों पर लदे हुए थे, एक बड़े टोकरे में एक मज़दूर मुर्गियाँ लिये जा रहा था, जो परों को फड़फड़ाती हुई बार-बार कुड़-कुड़ करती

थीं, दो ब्राह्मण तहसीलदार साहब के घोड़े की लगाम थामे हुए थे और तहसील के बाक़ी अहलकारों के साथ भी इसी तरह एक़-एक आदमी लगाम थामे चला आ रहा था।

गाँव की हद से बाहर आकर पेशकार ने कहा—"हुज़ूर मौज़ा खुलातआ की चन्द एक इन्तक़ाल (परिवर्तन) की मिसलें हैं। यहाँ से कोई दस कोस होगा।"

घोड़ों की लगामें खुलातआ ग्राम की ओर मोड़ दी गईं। पतली सी पगडंडी पर चला हुआ यह लम्बा क़ाफ़ला ख़ुद पिण्डारों का गिरोह मालूम होता था जो निहत्थी जनता से जबरदस्ती उनका माल लूटने जा रहा हो। पगडंडी एक ऊँचे पहाड़ के गिर्द चक्कर खाती हुई ऊपर उठती जा रही थी। क़ाफ़ला चलता गया और भयभीत ब्राह्मण चुपचाप खड़े उसे देखते रहे। उन्हें विश्वास न हुआ कि तहसील वाले उनके गाँव से चले गये हैं और फिर शायद कई वर्ष तक इधर न आयँगे। उन्हें ख़याल हुआ कि जब वे अपने गाँव में वापस जायँगे तो तहसील वालों को वहाँ पूर्ववत मौजूद पायेंगे। बूढ़े नम्बरदार ने सोचा कि तहसीलदार का आगमन इस गाँव के लिये किसी बड़े भारी संकट की भूमिका के समान था। और यह कि स्वर्गीय देवताओं का क्रोध बिजली बनकर सागरा पर टूटेगा। यह विचार आते ही वह काँप गया। लकिन पिंडारे लूट मार कर चुके थे। और अब वे खुलातआ ग्राम की ओर जा रहे थे। और उन्होंने मुड़कर एक बार भी सागरा ग्राम की ओर न देखा, जिसे उन्होंने एक चिचोड़ी हुई हड्डी की तरह एक तरफ़ फेंक दिया था। धीरे-धीरे यह क़ाफ़ला चलता हुआ ऊपर पगडंडी पर फैले हुए मैले बादलों के आवरण में लुप्त हो गया और सागरा की मिट्टी की निर्जीव प्रतिमाओं में हरकत पैदा हुई।

सूखे ओठों पर ज़बानें फिरने लगीं। लम्बी-लम्बी आह और आराम की साँस।

इस मानव-समाज में जहाँ एकता और साम्य नहीं, अत्याचार की अन्धी लहर ऊपर से आती है और बिजली की सी तेज़ी के साथ परिवर्तित होती हुई समाज की निचली तहों में पहुँच जाती है, जहाँ उसकी ठोकर सब से अधिक भयानक और तीव्र होती है। समाज की अन्धी व्यवस्था का वह कोप जो सागरा के ब्राह्मणों पर उतरा, एक बिजली बनकर यमुना पर टूटा। यमुना—वह सोने की मूर्ति की भाँति चमकती हुई यमुना, जिसने उस रात गाँव वालों के लिये अपने यौवन का समस्त सौन्दर्य पिंडारों के सरदार के आलिंगन में मोतियों की तरह बिखेर दिया था, वही यमुना आज तहसील वालों के चले जाने के बाद बूढ़े ब्राह्मणों के दुख और क्रोध का शिकार हुई। अगर यमुना यह समझती थी कि उसने अपने त्याग से गाँव वालों को कृतज्ञ कर दिया था तो यह उसकी बड़ी भूल थी। अगर वह यह समझती थी कि उसने कोई अच्छा काम किया था तो यह उसकी ग़लती थी। अगर गाँव के बूढ़े नम्बरदार ने उसे ऐसा करने को कहा था तो यह उसका एक कर्त्तव्य था, जो बूढ़े नम्बरदार पर गाँव को बचाने के लिये लागू होता था। लेकिन वे नहीं सहन कर सकते थे कि वह स्त्री जिसके नग्न सौन्दर्य के कारण उन पर यह संकट आया था, यों गाँव में दनदनाती फिरे और गाँव वालों को संकट में फँसाती रहे। क्योंकि जब धरती के देवता के मुँह को रक्त लग जाता है तो उसकी हिर्स बढ़ जाती है और यद्यपि सब देवता ज़बान नहीं रखते लेकिन सब देवताओं की दृष्टि एक होती है। फिर क्या यह सम्भव न था कि तहसीलदार साहब के बाद थानेदार

साहब पधारें और थानेदार साहब के बाद फारेस्टर या महा मलात का अफ़सर।

बहुत सोच-विचार के बाद गाँव वालों ने निर्णय किया कि यमुना को जातिच्युत किया जाय। उसे अपने घरों में न घुसने दियाजाय, उसकी दूकान से सौदा न ख़रीदा जाय, उसका पूर्ण बहिष्कार किया जाय सोते से पानी न भरने दिया जाय, गाँव की कोई स्त्री उससे बात न करे और यमुना से कहा जाय की वह जल्दी से जल्दी इस गाँव को छोड़ कर चला जाय। बिरादरी ने इसके अतिरिक्त एक भारी यज्ञ करने का निश्चय किया जहाँ सब गाँव वाले प्रायश्चित करेंगे और जहाँ रामदई, दुलारी और खेतरी को नया जन्म दिया जायगा और शिव जी महाराज के पवित्र मन्दिर के गिर्द एक सौ एक दफ़ा परिक्रमा करके भगवान से प्रार्थना की जायगी कि सागरा-निवासी भविष्य में इस प्रकार के संकट से सुरचित रहें।

शायद यमुना का दिल इस अचानक चोट को न सह सका। उसे फिर कभी किसी ने हँसते हुए नहीं देखा। ऐसा मालूम होता था कि उसका हृदय टुकड़े-टुकड़े हो गया है और उसकी आत्मा बड़ी निर्दयता से कुचली गई है। क्योंकि अब उसकी निगाहें ऊपर न उठती थीं। उसे ऐसा मालूम होता था कि एक अज्ञात वस्तु जो पहिले थी अब नहीं है और किसी ने एकाएक गला घोंट कर उसे मार डाला है। इस आन्तरिक अभाव को गाँव वालों के अत्याचारों ने और भी तीव्र कर दिया। चन्द दिनों वह खोई-खोई सी रही, उसकी आँखों में आँसू न रहे, न अपने बच्चे के लिये पहिला सा प्यार। जब स्त्रियाँ झरने पर पानी भरने के लिये मिट्टी की गागरें उठाते हुए उसकी दूकान के सामने से निक-लतीं तो तानों और बोली-ठोली के तीर उसके घायल हृदय के आर-

पार हो जाते। लेकिन आँखों में आँसू नहीं थे जो उसके गालों पर ढुलकते और उसकी आत्मा को तृप्त कर सकते। चन्द ही दिनों में उसका यौवन मर गया। जवानी थी, सुन्दरता थी, आकर्षण था लेकिन प्राण लुप्त हो गया था। और जिस दिन प्रायश्चित्त का यज्ञ रचाया गया और नीलाकाश और हरे-भरे खेत और स्त्रियों के गाने और उनके नये वस्त्र और बालकों के चित्ताकर्षक ठट्ठों ने उसकी आत्मा को कंपित कर दिया तो वह व्याकुल हो उठी, और भागी-भागी बूढ़े नम्बरदार के पास पहुँची और उसके पाँव पर जा गिरी। लेकिन बूढ़े नम्बरदार ने अपने पवित्र पाँव परे खींच लिये और उसे निर्दयता से झिड़क कर कहा कि वह एक अपवित्र स्त्री थी और उसे कोई अधिकार न था कि वह यज्ञ में सम्मिलित होकर प्रायश्चित्त कर सके। बिरादरी का निर्णय सब के लिये समान था।

दिन भर यज्ञ होता रहा और बूढ़े ब्राह्मण संस्कृत और हिन्दी के मिले-जुले ग़लत श्लोकों का जाप करते रहे। हवन और सामग्री का सुगन्धित धुँवाँ ऊपर आकाश की तरफ़ उठता रहा। खेतरी, दुलारी और रामदई ने नया जन्म लिया, गाँव के प्रत्येक व्यक्ति ने प्रायश्चित किया। घी, मक्की के आटे और गुड़ का बना हुआ हलुआ सब में वितरित किया गया। लेकिन यमुना को किसी ने न पूछा और न उसे यज्ञ-मंडप के पास आने किया।

शाम को शिव मन्दिर के गिर्द परिक्रमा करके और शंख और घड़ियाल बजाकर मन्दिर के किवाड़ बन्द कर दिये गये, और सब लोग अपने-अपने घरों को चले गये। बहुत देर के बाद यमुना शिव मन्दिर के समीप आई, वहाँ कोई न था। मन्दिर के किवाड़े बन्द थे। उसने चाहा कि वह भी मन्दिर के

गिर्द परिक्रमा कर ले। लेकिन उसे अब किवाड़ खोलने का साहस न हुआ। वहीं द्वार के बाहर खड़ी होकर अपनी गर्दन में अपने सिर की ओढ़नी डाल ली और हाथ बाँध कर खड़ी हो गई। वह बहुत देर वहाँ खड़ी रही। सूर्य की अन्तिम किरणों का सुनहरा जाल चीड़ और देवदारे के वृक्षों पर फैलता हुआ पहाड़ों की चोटियों पर जा पहुँचा और फिर उषा की एक अन्तिम ख़ूनी लकीर में परिवर्तित हो गया। कुछ देर के बाद वह लाल लकीर भी ग़ायब हो गई और पहाड़ और उनकी हरियाली और घाटी तथा पहाड़ियाँ नीले और काले रंगों में विचित्र ढंग से रंग गईं और उनके चिन्ह प्रति क्षण अदृश्य होते गये। संध्या के बढ़ते हुए अन्धकार में यमुना के हृदय ने बार-बार मन्दिर के देवता से पूछा कि आख़िर क्या उसके पाप का कोई प्रायश्चित न था ? क्या वह वास्तव में गाँव वालों से अधिक अपराधी और पापी थी ? लेकिन जब उसके बार-बार पूछने पर भी मन्दिर के देवता ने उसे कोई उत्तर न दिया और मन्दिर के पट न खुले, और रात्रि के अन्धकार में शिव जी का पवित्र मन्दिर उस पर हँसता हुआ मालूम हुआ तो एकाएक उसके धार्मिक भावों की दीवारें गिर गईं, उसका घायल स्वाभिमान उसके हृदय में एक कुचले हुए फन की तरह ऊँचा हो गया और वह तेज़-तेज़ क़दमों से वापस लौट आई।

वह पगडण्डी, जो गाँव से बाहर घाटियों और जंगलों में से होती हुई जा रही थी, रात्रि के अंधकार में आशा की अन्तिम किरण की सतह दिखाई दे रही थी। लेकिन उस रात सागरा के किसी ब्राह्मण ने उस पगडण्डी पर जाती हुई स्त्री को नहीं देखा, जिसके बाल खुले थे, और गर्दन में एक मैली ओढ़नी के दो पल्ले लहरा रहे थे—और जिसको न प्रसन्नता थी न शोक,

न निराशा, न आशा, न जीवन था न मृत्यु और जो तेज़-तेज़ क़दमों से भागी जा रही थी। उस स्त्री को किसी का भय न था, उस स्त्री को कोई रोकने वाला न था। पहाड़ों के वातावरण में एक ऐसी भयानक निस्तब्धता घुली हुई थी मानो वे किसी के मिटते हुए जीवन का अन्तिम दृश्य देख रहे हों—एक ऐसी भीषण निस्तब्धता, जिसके पीछे किसी आने वाले तूफ़ान की गूँज सुनाई देती थी।

लेकिन उस रात सारारा के किसी ब्राह्मण ने उस पगडण्डी पर जाती हुई स्त्री को नहीं देखा। हाँ, कुछ दिनों बाद उन्होंने सुना कि खोड़राटा ग्राम के निकट एक नदी में एक नवयुवती का शव पाया गया। उसका हुलिया यमुना से मिलता-जुलता था।

गाँव के बूढ़े नम्बरदार ने यमुना के लड़के को पालने का ज़िम्मा अपने ऊपर लिया और यमुना की भूमि और दूकान भी अपने क़ब्ज़े में ले ली।

झील से पहले—झील के बाद

जो सड़क श्रीनगर से गुलमार्ग की तरफ़ जाती है वह दोनों तरफ़ लगे शमशाद के खूबसूरत पेड़ों से घिरी हुई है। यह सड़क धान के खेतों के बीच में से गुज़रती है। सड़क के दोनों तरफ़ पानी की सुस्तगामी नदियाँ धान के खेतों को सेराब करती हुई बह रही हैं। खेतों के किनारे जहाँ कहीं पानी खड़ा है या चलता फिरता थम सा गया है वहाँ कवल और मुक्खन प्याले खिले हुए हैं। सफ़ेद, गुलाबी, ज़र्द। कहीं कहीं चनारों के नीचे गड़रिये गायें भेड़ें चरा रहे हैं। चार-चार औरतों की टोलियाँ गीत गाती हुई धान कूट रही हैं। एक औरत सर पर घड़ा उठाये पानी भरने जा रही है, लारी को देखकर यों ही हँस पड़ती है। उसके मोतियों से सफ़ेद दाँत बहुत देर तक आँखों में, फिर कल्पना में काँपते रहते हैं।

जो सड़क टंगमर्ग से गुलमर्ग को जाती है वह सिर्फ़ तीन मील लम्बी है। उस सड़क पर अंगरेज़ मर्द और औरतें उमदा घोड़ों पर सवार नज़र आते हैं। उनके पीछे-पीछे भूरी रंगत वाले कश्मीरी हातू हाँपते हुए दौड़ते जाते हैं। किसी के हाथ में टोकरी होती है, किसी के हाथ में थर्मास तो किसी की गर्दन पर किसी मेम साहब का बच्चा सवार होता है। मज़दूर अपनी कमर पर ढाई मन का असबाब उठाये झुके हुए चढ़ाई चढ़ते जाते हैं। वह पंचायत वालों के वे कथन नहीं पढ़ सकते जो टंगमर्ग में गमा और सूज़ाक की दवाईयों के इश्तेहार की तरह जाबजा लगे हुए हैं—"मज़दूरी में इज्ज़त है" मज़दूरी से भागो नहीं, मज़दूरी करना सीखो। उस सड़क के दोनों तरफ़ चील और देवदार के तनावर दरख़्त हैं, जिनके पाँव में सफ़ेद छतरियाँ और खम्बें उगी हुई हैं, बनफ़्शे के फूल हैं, सरेड़ी का सब्ज़ा और किसी दीवार पर शहद की मक्खियों ने छत्ते लगा रक्खे हैं और सारा जंगल उनकी मद्धिम आवाज़ से गूँजता हुआ मालूम होता है। इस शहद में जंगली फूलों की मिठास होती है और वह ताक़तवर विटामिन, जिसे तैयार करते वक़्त हाथ से नहीं छुआ जाता।

दो नन्हें कश्मीरी लड़के इस सड़क पर चलते हुए नज़र आते हैं। वे गुलमर्ग से थके-थके क़दमों से चल रहे हैं। शायद घर पहुँच कर माँ-बाप भी नाराज़ होंगे, शायद खाना न मिले, सिर्फ़ चाँटे ही मिलें। सड़क के नीचे बहुत दूर तक शोर मचाता हुआ फ़ीरोज़पुर नाला बह रहा है। नीला पानी, जिसमें सफ़ेद झाग मिली हुई है। नीला, जैसे कश्मीरी लड़कियों की आँखें, सफ़ेद सफ़ेद जैसे लारी की तरफ़ देखती हुई कश्मीरिन के दाँत। लेकिन अंडे फिर भी नहीं बिके।

दस-बारह कश्मीरी लड़कियाँ प्यालीनुमा टोकरियों में जंगल से लकड़ियाँ उठाये आ रही हैं। इन बड़ी बड़ी टोकरियों में वे टंगमर्ग में रहने वाले घुमक्कड़ों और तपेदिक़ के रोगियों के लिये लकड़ियाँ चुनकर ला रही हैं। इनमें कई लड़कियाँ तपेदिक़ के मरीज़ों की तरह खांस रही हैं क्योंकि लकड़ियाँ उठाते वक़्त जिस्म झुका कर चलना पड़ता है। लड़कियों की टाँगें बचपन ही से फिर कर बेडौल हो जाती हैं। चाल में बेडौलपन, गालों में गढ़े और छातियों में सिलवटें पड़ जाती हैं। ये लड़कियाँ कभी जवान नहीं होतीं। पहले तो सिर्फ़ लड़कियाँ होती और फिर एकदम माएं बन जाती हैं। जवानी क्या है, रस क्या है, जंगल में शहद की मक्खी किस लिये फूलों की मिठास जमा करती है, कँवल क्यों मुस्कराते हैं, मक्खन प्यालों की ज़र्द-ज़र्द पत्तियाँ, थमे हुए पानी क्यों काँपते रहते हैं, इन्हें इन बातों की समझ नहीं।

जो सड़क नौ हज़ार फ़िट की बुलन्दी पर गुलमर्ग की घाटी के प्याले के गिर्द एक सुनहरे फ़ीते की तरह घूमती जाती है उसे सरकुलर रोड कहते हैं। यहाँ से सारे कश्मीर की घाटी दिखाई देती है। सैकड़ों मील का लम्बा-चौड़ा मैदान चारों तरफ़ ऊँचे-ऊँचे पहाड़ों से घिरा हुआ। साफ़ पता चलता है कि आज से हज़ारों साल पहले, जब कि अभी इन्सान पैदा न हुआ था, इन पहाड़ों ने एक नीली झील को घेर रक्खा था। चारों तरफ़ बर्फ़ के गिलेशर होंगे और बीच में यह झील, जिसके निशान अभी डल, दुल्लर और मानस बल की झीलों में मिलते हैं। कभी-कभी यह महसूस होता है कि अब भी वही पुरानी झील है, वही बर्फ़ से ढँके हुए पहाड़ हैं और सूरज की पहली किरन के साथ मैं ही वह पहला आदमी हूँ जो इस रहस्यपूर्ण दृश्य को देख रहा हूँ। फिर वह झील का पानी एकदम जैसे कहीं ग़ायब हो जाता है

और घाटी का सब्ज़ा और उसके बाग़ और उसके गाँव और शहर आँखों के आगे फैलते जा रहे हैं। देवदारों का सन्नाटा फ़ीरोज़पुर नाले के शोर से मिलता मालूम होता है और ज़िन्दगी हज़ारों साल आगे की तरफ़ लौट आती है।

इस सड़क पर मेरी मुलाक़ात एक आयरिश लड़की से होती है। नाम है लीरा ओ कॉरनर (Lira O Cownar)। लीरा की आँखें न नीली हैं न भूरी, न सब्ज़, बल्कि इन तीनों से मिलता-जुलता हुआ कोई और रंग। लीरा की आँखों में एक अजीब मोहिनी है। जैसे ये आँखें हमेशा सपने ही देखा करती हैं। लीरा के बालों का रंग प्लाटिनम जैसा है, नाज़ुक, महीन, रेशमी। उनके गिर्द उसने एक सुनहरा रूमाल बाँध रक्खा है। वह आराम से बैठी दरमियाने देवदारों के छतनार के साये में उस घाटी का स्केच बना रही है जहाँ दरख़्तों की फुंगियों का एक जाल सा बुना हुआ है और जिसके आख़िर में नदी के पानी की एक लकीर खिंच गई है।

"यहाँ खड़े-खड़े क्या कर रहे हो, अपनी राह देखो।"

मैंने इतमीनान से कहा—"यहाँ हरा रंग ज़्यादा गाढ़ा है। फूलों के तख़्ते और देवदारों के जाल का अनुपात सही नहीं, ख़ासकर यहाँ तो……।"

"बैठ जाओ मैं अभी ठीक करती हूँ……क्या तुम्हें वाटर कलर का शौक़ है?"

"मुझे वाटर कलर से इश्क़ है। यों समझिये कि अभी इश्क़ हुआ है।"

लीरा मुस्कराई और पौन घन्टा ख़ामोश बैठी स्केच बनाती रही।

"मुझे भूक लगी है और मेरे पास सिर्फ़ ये चन्द बिस्कुट हैं।' लॉरा ने एक बिस्कुट होंठों के बीच रखते हुए कहा।

'लेकिन।" मैंने कहा—"मेरे पास यह भुना हुआ मुर्ग़ है, इस थर्मास में। और कुछ चपातियाँ भी हैं। अगर तुम्हें हिन्दुस्तानी खाने से नफ़रत न हो।"

"हरगिज़ नहीं। बल्कि मैं तो......।"

वह शौक़ से खाने लगी। फिर बोली—"इसमें Chillies बहुत ज्यादा हैं। न जाने तुम लोग मिर्चें इतनी ज्यादा क्यों पसन्द करते हो?"

"ये खाने का मज़ा दूना कर देती हैं। हिन्दुस्तानियों की जहाँ और हर एक चेतना मर चुकी है वहाँ ज़ायक़े की चेतना अभी बनी है, बल्कि लगातार फ़ाक़ों से यह चेतना और भी तेज़ हो गई है। इसलिये लाल मिर्चें... ।"

"न जाने तुम लोगों में यह क्या आदत है।" उसने अपने प्लाटिनमी बालों को झटका कर कहा—"किसी पढ़े-लिखे हिन्दुस्तानी से बात करो, वह हिर-फिर कर राजनीति पर आ जायगा। मैं लाल मिर्चों का ज़िक्र कर रही थी, तुम अपने देश की राजनीति का ज़िक्र ले बैठे। न जाने क्या बात है!"

उसके सुर्ख़ लब ग़ुस्से से थरथराने लगे।

मैंने कहा—"चलो, सुर्ख़ मिर्चों के ज़िक्र जाने दो। आओ सुर्ख़ होंठों का ज़िक्र करें। उन गुलाब के फूलों का, जो तुम्हारे गालों पर खिले हुए हैं। उन चाँद की किरनों का जिनसे तुम्हारे बाल बने हैं। उन सपनों का जो तुम्हारी आँखों की पुतलियों

में काँप रहे हैं जैसे किसी खामोश झरने की सितह पर तरनारी के हैरान व काँपते फूल !"

……दूसरे दिन शाम को गुलमर्ग के बाज़ार में लीरा ओ कार्नर घोड़े पर सवार चली जा रही थी। मैंने उसे देखा, उसने मुझे, लकिन वह मुझे पहिचान न सकी। पूरब पूरब है पच्छिम पच्छिम !

जो सड़क गुलमर्ग की घाटी के बीचों बीच जाती है वह गाफ़ कोर्स को बीच में काटती है। इस सड़क के दोनों तरफ़ अँगरेज़ मर्द और औरतें गाफ़ खेलते नज़र आते हैं और कश्मीरी हाथों में गाफ़ के सामान के झोले और छड़ियाँ उठाये उनके पीछे भागते नज़र आते हैं। इस सड़क पर गुलमर्ग का क्लब है और आगे चलकर बिलकुल बीच में एक ऊँची जगह पर इम्पीरियल बैंक और नैडोज़ होटल। जागीरदाराना निज़ाम में और इससे पहले जो महत्व धर्मशाला और पूजा स्थानों को प्राप्त था, इस महाजनी व्यवस्था में वही महत्व होटल और बैंक को हासिल है। नई व्यवस्था के नये प्रतीक पुजारी अब भी वही हैं।

इस सड़क पर अँगरेज़ नुमा हिन्दुस्तानी घोड़े दौड़ाते फिरते हैं। कश्मीरी नौकर सुर्ख़ शलगम और प्याज़ के गट्ठे उठाये हुए नज़र आते हैं। अण्डों की टोकरियाँ, मटन, मटर, और फल उठाये ले जा रहे हैं। लकिन ये चीज़ें उनके खाने के लिये नहीं हैं। साहब लोगों के बच्चों ने हैट पहिन रक्खे हैं और क़ीमती ऊनी सोयटर। मेम साहब लोगों ने कार्ड मखमल की बेश क़ीमत पतलूनें पहिन रक्खी हैं जिन्हें गुलमर्ग के कश्मीरी दर्ज़ियों ने सिया है। लेकिन ये लोग इन पतलूनों को भी नहीं पहिन

सकते। ये लोग सिर्फ़ मज़दूरी कर सकते हैं, जैसा कि पंचायत का फ़रमान है—

"मजदूरी में इज्ज़त है !"
"मजदूरी में इज्ज़त है !!"
"मजदूरी में इज्ज़त है !!!"

इसी सड़क पर एक हातू बैठा है। उसके साथ एक जूते मरम्मत करने वाला है और एक भिखारी। हातू पीली-पीली पकी हुई हाड़ियों की एक टोकरी सामने रक्खे बैठा है। ये हाड़ियाँ वह अपने खेत की मेंड़ पर उगे हुए हाड़ी के दरख़्त से उतार कर लाया है। उस खेत में जो अनाज था उसे ज़मींदार बनिये और सरकार ने रेहन रख लिया है। अब दो-तीन हाड़ियों और सेबों के दरख़्त बाक़ी रह गये हैं। वह उनका फल गुलमर्ग ले जा कर बेचता है ताकि वह साहब लोगों को हाड़ी और सेब खिलाकर अपने बाल-बच्चों के लिये कुछ थोड़े से चावल ख़रीद सके। भिखारी आलती-पालती मारे बेहयाई से पैसा माँग रहा है। जूता मरम्मत करने वाला एक ऐसे जूते की मरम्मत कर रहा है जिसकी क़ीमत पचास रुपये से कम न होगी। ख़ुद उसके पाँव नंगे हैं। तलुवे फट गये हैं एक जगह से तो ख़ून भी बह रहा है। लेकिन जूतों की तो ख़ैर कुछ क़ीमत भी होती है, भला इस ख़ून की क्या क़ीमत होगी।

एक बूढ़ी अंगरेज़ औरत अपनी रंगीन छतरी घुमा-घुमा कर अपने साथ चलने वाली दूसरी औरत से कह रही है—"माई डियर, तुम्हें मालूम नहीं कि जब वह हिन्दुस्तानी हमारे कमरे में घुस आया तो मुझे कितना डर मालूम हुआ, डर और ग़ुस्सा। मैं भाग कर दूसरे कम्पार्टमेन्ट में अपने हस्बेंड के पास चली गई......।"

आज बहुत दिनों बाद मैं फिर इस सरकुलर रोड पर सैर करने के लिये निकला हूँ। यह जंगल बिलकुल ख़ामोश है, कश्मीर की घाटी पर सूरज डूब रहा है और बढ़ते हुए अंधेरे और घुटती हुई रोशनी की एक लगातार शतरंज सी बनती जा रही है। यह जंगल क्यों ख़ामोश है, इस घाटी की क़िस्मत क्यों ख़ामोश है, यह जंगल अपने बेटे-बेटियों के लिये भी नहीं बोलता। इस जंगल का शहद, इसके अख़रोट, इसके सेब, अन्डे, लकड़ी, इसका रेशम, इसकी सारी ख़ूबसूरती और सौन्दर्य, इसकी कोई चीज़ भी अपने बेटों के लिये नहीं ? यह कैसी ख़ुदाई है ? यह जंगल क्यों ख़ामोश है ? यह क्यों नहीं कहता—"मज़दूरी न करो। काड मख़मल की पतलूनें पहिनो, सेब खाओ, ख़ूबानी और अख़रोट खाओ, मज़दूरी करने से इन्कार कर दो। घोड़े की सवारी करो, दनदनाते फिरो। यह ज़मीन तुम्हारी है, यह आसमान तुम्हारा है। और अगर यह सब कुछ नहीं है तो आओ इस सारी घाटी को झील बना दें। पानी से लबालब भरी हुई झील जिसमें टंगमर्ग और गुलमर्ग सब समा जायँ। जिसके पानी में इन्सानी बेरहमी के जहन्नमी और वहशी घिरौंदे सब फ़ना हो जायँ। बस चारों तरफ़ वही पुरानी झील हो, हज़ारों लाखों सालों की झील और उसके चारों तरफ़ वही बर्फ़ के गिलेशर और बर्फ़ से लदे हुए पाहड़ खड़े हों ताकि जब आसमान की ऊँचाइयों से सूरज की पहली किरन झील की सितह पर उतरे तो ख़ुशी से चिल्ला उठे—"शुक्र है, अभी इन्सान पैदा नहीं हुआ।"

करमचन्द और करमदाद

यह मीरपुर का जिक्र है। मीरपुर से बीस कोस के फ़ासले पर मौलवी साहब का कोटला है उसे मौलवी साहब का कोटला इसलिये कहते हैं कि यहाँ पर एक बहुत पुराना कुआँ है जो गर्मियों के दिनों भी नहीं सूखता। जब तेज़ लू चलती है और आसपास के देहातों के सारे कुएँ सूख जाते हैं तो गहरे भूरे रंग की तपती हुई पगडण्डियों पर गहरे गंदुमी रंग की औरतें नीली क़मीजें और काली शलवारें पहिने हुए घड़े उठाये इसी कुएँ का रुख़ करती हैं। यह कुआँ बहुत अरसा गुज़रा एक ख़ुदा-परस्त मौलवी ने तामीर कराया था जो झेलम के उस पार से आया था। कुआँ बहुत गहरा है और उसका पानी बहुत मीठा है। दूसरे कुओं की तरह खारी नहीं है इसलिये यहाँ पर औरतों की भीड़ लगी रहती है, जो दूर-दूर के देहातों से चल कर मीठा पानी लेने के लिये आती हैं।

मौलवी साहब के कोटले में इस कुएँ के सिवा और कोई चीज़ मीठी नहीं है। जाड़े में कड़ाके की सर्दी पड़ती है और गर्मियों में तेज़ लू चलती है। खेतों में नक्खद बाजरे के सिवा और कुछ पैदा नहीं होता। देहाती बड़ी कड़ुई बोली में बात करते हैं और हमेशा फटे-पुराने कपड़े पहिने रहते हैं। गर्मियों में इसलिये नहीं नहाते कि पानी नहीं मिलता और सर्दियों में इस-लिये नहीं नहाते कि पानी मिलता है लेकिन बर्फ़ से ज़्यादा ठंडा होता है। कोटले के चारों तरफ़ लुंड मुण्ड नंगी पहाड़ियाँ हैं जिन पर भीकड़ की झाड़ियों के सिवा कुछ नहीं उगता। इन्हीं झाड़ियों से लोग ईंधन का काम लेते हैं। इसके फूलों से शहद निकालते हैं और इसकी जड़ों को कूट कर बुख़ार, खाँसी, दमा, तपेदिक़, निमोनिया, जुल्लाब नासूर, गँठिया और दूसरे तमाम रोगों के लिये इस्तेमाल करते हैं, अकसर अच्छे हो जाते हैं। इन लोगों की तन्दुरुस्ती इतनी अच्छी है कि ये लोग दूर-दूर तक डकैती और चोरी के लिये जाते हैं। कोटले में हर औरत जो ब्याही जाती है, भगाकर लाई जाती है। कोटला और आस-पास के देहात का कोई घर ऐसा नहीं है जिसका कोई आदमी जेल न जा चुका हो या फाँसी की सज़ा न पा चुका हो। हर घर में एक रायफ़ल ज़रूर मौजूद होगी, क्योंकि हर घर का जवान बेटा फ़ौज में जाके भर्ती हो जाता है। मौलवी साहब के कोटले में कोई मौलवी नहीं रहता है।

बहुत अरसा गुज़रा। इसी मौलवी साहब के कोटले के दो नौजवान रोज़गार की तलाश में घर से निकले। एक का नाम था करमचन्द, दूसरे का नाम था करमदाद। दोनों बड़े तगड़े जवान थे और सूरत-शकल से एक दूसरे के भाई मालूम होते थे, अगरचे उनमें कोई ख़ानदानी रिश्ता न था। उन दोनों नौजवानों को घरों से तीन-तीन रोटियाँ मिलीं और पिसा हुआ

नमक और एक-एक प्याज़ की बड़ी गाँठ। लाठियाँ लेकर और रोटियाँ पोटली में बाँधकर करमचन्द और करमदाद अपने-अपने घर से निकले और मौलवी साहब के कुएँ पर मिल गये।

थम्ब गाँव के नम्बरदार की बेटी, जो कुएँ पर पानी भरने के लिये आई थी, उन दोनों को देखकर हँसी और लाल छींट के दुपट्टे की ओट से हँसती रही। करमचन्द उसके कुँआरे सीने के उतार-चढ़ाव को बड़ी हसरत से देखता रहा फिर हिम्मत करके बड़ी नम्रता से बोला—"ए थम्ब के नम्बरदार के घर की चाँदनी, तेरी माँ को काला भैंसा ले जाय। फ़क़ीर परदेश जाते हैं, एक घूँट पानी पिला दे अपने कुएँ का!"

करमदाद ने करमचन्द के सिर पर धप जमा कर कहा—"ए बे गाली बकता है। नमक चोर के तुख़्मे बेपीर।" फिर करमदाद ने अपनी पगड़ी के तुर्रे को बराबर किया और शोख़ निगाहों से थम्ब के नम्बरदार की हसीन बेटी को देखकर बोला—"देश निकाला मिला है। बोल, चाँदी की मूरती। अपने मक्खन ऐसे ख़ूबसूरत हाथों से घड़े को झुका के पानी पिला दे। करमदाद तुझ पर मौलवी साहब का सारा कोटला क़ुरबान कर देगा।" (सिवाय अपने माँ बाप, बहन भाइयों के, सिवाय हरामज़ादे नमक चोर के तुख़्मे बेपीर करमचन्द के)

थम्ब के नम्बरदार की बेटी हँसते-हँसते दोहरी हो गई। करमचन्द बड़ी हसरत से नीली सूसी की क़मीस पर उभरती और गिरती हुई हँसी की लहरों को देखता रहा। नम्बरदार की बेटी ने अपना घड़ा झुका दिया। करमचन्द और करमदाद दोनों ने अपने चुल्लू बढ़ाये। नम्बरदार की बेटी ने इस तरह अपना घड़ा छलका दिया कि दोनों चुल्लू भरते गये और वे दोनों पीते

गये और काँच की चूड़ियों के छनाके सुनते गये और सुर्ख गालों पर गिरी हुई पलकों को देखते गये यहाँ तक कि सुर्ख गालों पर नन्हीं-नन्हीं शबनमी बूँदें उभर आईं और फिर घड़े का पानी ख़त्म हो गया और पीछे से आकर उनके गाँव की एक लड़की हुस्ना ने उन्हें धप जमाई और कहा—"मरदूदो, अब जाओ भी, बहुत परेशान कर लिया तुमने हमको।"

करमचन्द और करमदाद दोनों आहिस्ता-आहिस्ता उठे, अपनी लाठियाँ सँभालीं, जगत पर खड़ी लड़कियों को सलाम किया, अपने गाँव को, उसके आस पास के पहाड़ों को सलाम किया, और मुँह मोड़ कर मीरपुर के रास्ते पर हो लिये लड़कियों की आँखों में आँसू थे। वे हौले-हौले गाने लगीं—

"टुर चलियों परदेश !
राँझना ! राँझना !!"

कच्चे रस्ते के मोड़ तक वे दोनों राँझना-राँझना के नग़मे को अपने साथ चलता हुआ महसूस करते रहे। मोड़ पर एक-दम वह नग़मा रुक गया। उन्होंने घूम कर देखा। वह गाँव, वह कुआँ वे पहाड़ियाँ, वे टीले, जिन पर वे चाँदनी रातों में खेला करते थे, बचपन में आँखमिचौली, जवानी में कबड्डी, वे सब नज़रों से ग़ायब हो चुके थे। मोड़ मुड़ते ही जैसे हर पुरानी चीज़, हर जानी पहिचानी प्यारी चीज़ उनसे कट कर अलग हो गई और अब वे एक नये रस्ते पर, एक नये शहर को, एक नये देश में एक नया रोज़गार ढूँढने जा रहे थे।

करमचन्द और करमदाद ने अपने ऊँचे रास्ते से नीचे को फैलती हुई, गिरती हुई पहाड़ियों के सिलसिले को देखा, जिनके आख़िर में झेलम का किनारा एक चाँदी की गोट की तरह

चमक रहा था। करमदाद ने कहा—"दिन ढलने के पहले हम मीरपुर पहुँच जायँगे।" करमचन्द ने कहा—"जल्दी चलो। रुकने से मेरे पाँव बार-बार लौट जाने को कहते हैं।"

करमदाद मुस्कराया। बड़े मीठे, जज़्बाती अन्दाज़ में बोला—"थम्ब के नम्बरदार की बेटी की याद तो नहीं आ रही? लेफ्टेन बहादुर ख़ाँ कहता था—मैं देश-देश घूमा हूँ। समुन्दर पार सात विलायत भी देख आया हूँ। ईमान से अपने गाँव ऐसी ख़ूबसूरत लड़कियाँ कहीं नहीं देखीं।"

करमचन्द ने जल्दी से कहा—"आगे बढ़ो, नहीं तो मुझे तुम्हें उठा के ले चलना पड़ेगा।"

"देखें कौन तेज़ चलता है।" करमदाद ने चैलेन्ज किया। दोनों तेज़-तेज़ क़दमों से चलने लगे। साथ-साथ, बराबर। जहाँ चौड़ा और चौरस रास्ता होता वहाँ दोनों साथ-साथ रहते। जहाँ ढलाई या चढ़ाई आ जाती, वहाँ कभी एक आगे हो जाता कभी दूसरा। कभी एक गीत गाने लगता, कभी दूसरा। इसी तरह चलते-चलते एक दूसरे से मुक़ाबला करते हुए, एक दूसरे को गीत सुनाते हुए वे बहुत सा रस्ता तय कर गये। सुबह से दोपहर हो गई और दोपहर भी जाने लगी तो वे बेरियों वाली ढेकी के नीचे पहुँच गये। यहाँ सिलेटी रंग की बड़ी-बड़ी चट्टानें थीं जिनके दामन में एक साफ़ सुथरा ठण्डा चश्मा था। चट्टानों के ऊपर बेरी का एक बहुत बड़ा झाड़ फैला हुआ था और चट्टानों के साये और झाड़ के साये से यह जगह मुसाफ़िरों को ख़ुशगवार और ठंडी मालूम होती थी।

वे दोनों चश्मे के किनारे लेट गये और जानवरों की तरह पानी पीने लगे। पानी पी के उठ बैठे और पुटलियाँ खोल के

खाना खाने लगे। बीच-बीच में जब ज़बान की राल भी बाजरे की रोटी को गले से उतारने में नाकाम रहती तो बढ़गर चश्मे से एक घूँट पानी का पी लेते और फिर खाना खाने में मसरूफ़ हो जाते।

करमदाद ने पूछा—"तुम मीरपुर जाकर क्या करोगे, क्या इरादा है ?"

करमचन्द ने कहा—"वही करूँगा जो मेरा बाप करता आया है। यानी नमक का ब्योपार।"

करमदाद ने कहा—"नमक चोर के तुख़्मे बेपीर, ब्योपार के लिये तुम्हारे पास पैसा कहाँ है ?"

करमचन्द ने कहा—"हाँ, पैसा तो नहीं है। सोच रहा हूँ, किसी आढ़त की दूकान पर नौकरी कर लूँगा फिर आहिस्ता-आहिस्ता कुछ हो जायगा।" और तुम क्या करोगे ?"

करमदाद ने कहा—"क्या करूँ, आज-कल भर्ती बन्द है वरना सब कुछ हो जाता। अच्छा, मीरपुर तो आने दो। अल्लाह ख़ुद असबाब पैदा करेगा।"

करमचन्द ने कहा—"तुम भी मेरे साथ आढ़त की दूकान पर नौकर हो जाना।"

करमदाद ने कहा—"नहीं, यह झिक-झिक मुझसे नहीं होती। यह बाज़ारों, गलियों, छोटी-मोटी दूकानों, तंग जगहों की नौकरी मुझसे नहीं होगी। करमचन्द, मैं तो कोई खुला काम चाहता हूँ, जिसमें ख़ूब हाथ पाँव फैला सकूँ। क्या करें, अपने देश में अनाज ही नहीं होता, नहीं तो मैं खेती बाड़ी करता, इधर आने की ज़रूरत ही क्या थी ?"

खाना खाके वे दोनों ज़रा एक पलक झपकाने के लिये सो गये और ऐसे सोये कि जब उठे तो सूरज बड़ी तेज़ी से पश्चिम की तरफ़ जा रहा था। दोनों एक दूसरे को गालियाँ देते हुए उठे और गालियाँ देते हँसते, गाते एक दूसरे से तेज़ चलने बल्कि अब तो दौड़ने का मुक़ाबला करते हुए वहाँ से चले। अब उनका मुक़ाबला आपस का न था बल्कि ढलते हुए सूरज से था। कोई दो मील तक वे दोनों दौड़ते हुए गये, फिर थोड़ासा दम लेकर आगे बढ़े और फिर दौड़ना शुरू कर दिया। जब दौड़ने से थक गये तो तेज़-तेज़ चलते गये। मुँह बन्द किये, पसीने में शराबोर, वे मीरपुर की तरफ़ चलते गये। और जब सूरज पश्चिम में पहुँच गया तो वे मीरपुर से चार कोस के फ़ासले पर छोटी मसजिद के क़रीब पहुँच गये थे। छोटी मसजिद के तालाब में मसजिद के मीनार और गुम्बद तैर रहे थे और उनके पीछे सूरज की रोशनी गुम हो रही थी। शाम की ठंडी हवा चलने लगी थी और कच्चे तालाब के किनारे बेरियों के झाड़ में वापस आती हुई चिड़ियों ने शोर मचाना शुरू कर दिया था। तालाब के सामने के घर से धुआँ उठना शुरू हो गया था और एक बच्चा अपने तुतलाते हुए लहजे में अपनी अच्छी अम्मी से रोटी का टुकड़ा माँग रहा था। एक लड़की तालाब पर पानी पीने आई और वे दोनों उसे देखकर ठिठक गये। उसके उलझे-उलजे बालों में डूबते हुए सूरज की किरनें झिलमिला रही थीं और उसकी बड़ी-बड़ी निर्मल आँखों में एक जादूभरी रोशनी ठंडी-ठंडी रोशनी सी महसूस होती थी। वे दोनों उसे देखकर ठिठक गये। उनके अपने गाँव में भी कोई लड़की इतनी ख़ूबसूरत न थी।

करमदाद पहले बोला—"तेरा बाप ज़िन्दा है न?"

लड़की ने बड़ी हैरत से उसकी तरफ़ देखते हुए कहा—"हाँ।"

"तेरी माँ ?"

"हाँ।"

"तेरा घर सामने है न ?"

"हाँ।"

"तेरे घर में लस्सी है ?"

"हाँ, मगर तुम...... ?"

"बस ज्यादा कुछ न कह हमसे। हमें अपने घर ले चल।" करमदाद ने उसे टोक कर कहा—"हम तेरे घर चल के तेरे हाथ से लस्सी पियेंगे। और बस, फिर फ़क़ीर चले आयेंगे। जल्दी कर, मंजिल खोटी हो रही है।"

लड़की के घर जाके उन दोनों ने पेट भर के लस्सी पी। छोटा लड़का, जो अम्मी से रोटी का टुकड़ा माँग रहा था, करमदाद की गोद में आ बैठा। करमदाद ने उसे रोटी का टुकड़ा दिया और उससे पूछा—"तेरा नाम क्या है ?"

"अल्लादाद।"

"तेरे बाप का नाम ?"

"मुराद।"

"वह तेरी अम्मी है ?"

"हाँ।"

"वह तेरी बहन है ?"

"हाँ।"

"तेरी बहन का क्या नाम है ?"

"बाली।"

"बाली से कह, हमारे घर आज एक मेहमान आया है। आज रात को खाना खाकर मीरपुर जायगा।"

अल्लादाद की अम्मी ने पूछा—"कहाँ से आये हो ज्वान ?"

"मौलवी साहब के कोटले से।"

"कहाँ जा रहे हो ?"

करमदाद ने कहा—"मैं तो यहीं रह रहा हूँ। मेरा दोस्त मीरपुर जा रहा है।"

(२)

करमचन्द ने बहुत समझाया लेकिन करमदाद नहीं माना। लाचार करमचन्द अकेला मीरपुर चला गया। वहाँ जाकर उसने आढ़त की दूकान पर नौकरी कर ली। वह आढ़ती के मुनीम के घर का सारा काम करता था और आढ़त की दूकान पर सारा सामान भी ढोता था और जब उसे फ़ुरसत होती तो मुड़िया पढ़ने बैठ जाता। बग़ैर मुड़िया पढ़े वह आढ़त का काम कैसे जान सकता था। इसी दिन रात की मेहनत में उसने तीन साल बिता दिये। अब वह बड़े मुनीम का छोटा मुनीम हो गया था और छोटे-मोटे क़िस्म के चार सौ बीस ख़ुद भी करने लगा था। अब वह हर रोज़ नहाता था। रेशमी बनियान, मलमल का कुरता और लट्ठे का पाजामा पहिनता। उसका बदन पहले की तरह खुरदुरा न था, हर रोज़ मुलायम होता जा रहा था। इन दो बरसों में एक बार भी वह अपने दोस्त करमदाद से मिलने न जा सका। न करमदाद उससे

मिलने आया। दो साल के बाद एक दिन ऐसा हुआ कि उसे आढ़त के सिलसिले में छोटी मसजिद के गाँव में जाना पड़ा। जाना असल में बड़े मुनीम को था, लेकिन चूँकि उस काम में कोई बहुत ज्यादा नफ़ की उम्मीद न थी, इसलिये बड़े मुनीम ने करमचन्द को भेज दिया।

करमचन्द बहुत सबेरे ही छोटी मसजिद के तालाब पर पहुँच गया। तालाब के सामने घर था और घर के दरवाज़े का अक्स पानी में पड़ता था। करमचन्द ने देखा कि तालाब की सतह पर एक दरवाज़ा खुला और उसमें से एक लड़की घड़ा लिये नमूदार हुई और दरवाज़े पर एक लमहे के लिये रुकी। दूसरे लमहे में एक और आदमी पीछे से आया। उसके कन्धे पर हल था। दोनों की निगाहें एक लमहे के लिये मिलीं। और फिर फ़ौरन पीछे से दो बैल आये और उनके पीछे एक अधेड़ उम्र का आदमी और एक जवान आदमी जो करमदाद था। वह अधेड़ उम्र के आदमी के साथ खेतों में चला गया और लड़की घड़ा उठाये आप ही आप मुस्कराती तालाब के किनारे-किनारे हौले-हौले एक अजीब चाल से चलती हुई करमचन्द के क़रीब आ गई। जैसे उसके जिस्म के हर ज़र्रे में मुहब्बत की लहरें मचल रही हों और किनारे से टकराने के लिये बेताब हों।

करमचन्द ने पूछा—"करमदाद कहाँ है ?"

लड़की पानी भरते-भरते एकाएक ठिठक गई। फिर उसने करमचन्द को पहिचान लिया। बोली—"खेतों में गया है।"

"तुम्हारे यहाँ काम करता है ?"

"हाँ।" लड़की ने ख़ुशी से सिर हिलाया।

"क्या तन्खाह मिलती है उसे ?"

"रोटी का टुकड़ा मिलता है। और क्या मिलेगा उसे ?"

"तुम्हारी उससे शादी नहीं हुई ?"

लड़की ने सिर झुका लिया। कुछ नहीं बोली।

"क्यों नहीं हुई ?"

वह आहिस्ता-आहिस्ता बोली—"अब्बा नहीं मानते।" फिर उसने आहिस्ता से घड़ा उठाया और मुँह फेर कर कहने लगी—"घर आके लस्सी पी जाओ। करमदाद तुम्हें बहुत याद करता है।"

करमचन्द ने धीरे से कहा—"नहीं बाली, मैं इस वक़्त नहीं आऊँगा। तुम करमदाद से कह देना कि उसका दोस्त दौलतराम लक्ष्मीचन्द महाजन के यहां छोटा मुनीम है, उसकी हालत बहुत अच्छी है। वह अपने दोस्त करमदाद को बहुत याद करता है। अगर वह करमचन्द के पास आ जाय तो उसे कोई तकलीफ़ न रहेगी।"

"मैं कह दूँगी।"

बाली चली गई। करमचन्द देर तक उसके ख़ूबसूरत जिस्म को देखता रहा। जब वह चली गई, नज़रों से ओझल हो गई, तब भी वह बहुत देर तक उसके ख़ूबसूरत जिस्म को देखता रहा।

तीन साल और गुज़र गये। और अब करमचन्द ने आढ़ती का इतना एतबार हासिल कर लिया था कि उसने रोज़-रोज़ की शिकायतों के दबाव से बड़े मुनीम को आढ़त की दूकान से निकलवा दिया। अब वह आढती का दाहिना हाथ था और

उसका सारा कारबार बड़ी .खूबसूरती से संभालता जा रहा था। उसी .खूबसूरती से वह अपनी आमदनी भी बढ़ाता जा रहा था, क्योंकि वह .खुद अपनी आढ़त की दूकान खोलना चाहता था और दौलत राम लक्ष्मी चन्द महाजन के मुक़ाबले पर मीरपुर में एक आलीशान हवेली खड़ी करना चाहता था। तीन साल और गुज़र गये और उसने बड़े मन्दे के ख़तरनाक दिनों में वह चाल चली की दौलतराम लक्ष्मीचन्द का सारा कारबार चौपट हो गया और उसे दिवाला निकालना पड़ा। अब तो मजबूर होकर करमचन्द को अपने मालिक की दूकान से अलग होना पड़ा। उसने बाज़ार में नुक्कड़ पर, जिधर से देहात को सड़क जाती थी, एक छोटी सी दूकान खोल ली। उसमें यह फ़ायदा था कि देहाती जो फ़सिलों का अनाज बेचने के लिये आते, सबसे पहिले उसी के यहाँ आते। थोड़े दिनों में करमचन्द की दूकान चमक उठी और उसका कारबार मीर पुर के आस पास के गाँवों में फैलने लगा और अब की छः साल के बाद उसे फिर अपने काम से छोटी मसजिद के गाँव को जाना पड़ा।

अबकी वह पैदल नहीं था, एक उमदा ख़च्चर पर सवार था और उसके साथ उसका नौकर था। अब वह तालाब के किनारे अजनबियों की तरह नहीं ठहरा बल्कि सीधा तालाब के किनारे उस पार के घर की तरफ़ अपना ख़च्चर बढ़ा लेगया और दनदनाता हुआ आँगन के अन्दर चला गया। चूल्हे के पास बाली की माँ रोटी पका रही थी। आँगन में बिछी हुई एक खाट पर बाला और करमदाद दोनों एक ही रकाबी में खाना खा रहे थे। मकई की रोटी और बथुवे का साग, थोड़ा सा मक्खन और लस्सी का छन्ना। करमचन्द उसे देखते ही उठ खड़ा हुआ और ज़ोर से बोला—"अबे नमकचोर के तुख़्मे बे पीर।" दोनों

दोस्त बड़े तपाक से गले मिले और जब करमदाद ने करमचन्द को छाती से लगा के ज़ोर से भींचा तो उसे मालूम हुआ कि करमचन्द का जिस्म तो बिलकुल ही नर्म पड़ गया है, औरत के जिस्म की तरह और उसका पेट भी थोड़ा सा आगे को बढ़ आया है।

करमदाद ने उसका पेट बजाकर पूछा—"कितने महीने का है, ढोलकी के ?"

करमचन्द हँसने लगा। करमदाद ने उसे भी अपने साथ खाने में शरीक कर लिया और वे तीनों एक ही रकाबी में खाना खाने लगे। करमचन्द को अब यह खाना सूखा-सूखा सा लग रहा था और उसे लस्सी के छन्ने से भी बू सी आ रही थी। उसने बाली की तरफ़ देखा और उसे महसूस हुआ कि वह ख़ूबसूरती के उन छोटे-छोटे टुकड़ों को फिर से जोड़ रहा है जो उसने अपनी ज़िन्दगी में कभी यहाँ कभी वहाँ देखे थे, लेकिन कभी एक जगह न रखे थे। सुबह के झिलमिलाते हुए ठंडे तारे जैसे ओस में भीगे हुए गुलाबी फूल, जैसे हवा में काँपते हुए आम के नये पत्ते, जैसे गहरी रात में नदी की सतह पर छनकर आने वाली धरती की सोंधी सोंधी ख़ुशबू, जैसे दोपहर के सन्नाटे में किसी विरह के मारे के गीत की गुम होती हुई लय, जैसे नमक के बड़े डले में गले सड़े अनाज की बोरियाँ हैं, ग़लीज़ गन्दे गुड़ की भेलियां हैं जो वह अपने गुदाम में गला सड़ा कर रखता था ताकि भाव चढ़ने पर उसे ज़्यादा दामों में बेंच सके। एकाएक करमचन्द को एक अहम अंदाज़ में महसूस हुआ जैसे उसके अन्दर की गन्दगी छट रही है और नूर की एक हाँपती कांपती सी किरन उसके अंधेरे सीने की चट्टान को तोड़ कर अन्दर आने का जतन कर रही है। करमचन्द ने कहा—"शादी कब हुई ?"

करमदाद ने कहा—"दो साल हो गये। अब तो नन्हा भी है।"

बाली खाट से उठ गई और नन्हे को ले आई। नन्हा करमचन्द की गोद में हुमकने लगा।

करमचन्द ने कहा—"तुम लोग शहर में आकर रहो। मैं एक बहुत बड़ी हवेली बनवा रहा हूं। सच कहता हूँ करमदाद ! तुम लोग मेरे यहाँ आ के रहो। अब तुम्हें मेहनत-मज़दूरी करने की ज़रूरत नहीं। करमदाद, दिन-रात खेतों में सड़ते हो। देखो तो, बाली के पास अच्छे कपड़े भी नहीं हैं।"

करमदाद ने कहा—"मैं तो अपने खेतों के बिना मर जाऊँगा। जाने तू कैसे दिन भर उस काली दूकान में रहता होगा। नमकचोर के तुख्मे बेपीर। छोड़ दे यह सब खटराग, मेरे घर आ जा। यहाँ तुझे मक्खन और लस्सी खिलाऊँगा। और खेतों में काम कराऊँगा। मगर अब तू काम कैसे करेगा। पहले अपने इस बड़े पेट का बच्चा तो जन ले।"

करमदाद हँसने लगा। बाली भी हँसने लगी। करमचन्द भी झेंप कर खिसयानी हँसी हँसने लगा।

× × ×

दस साल और बीत गये। और अब करमचन्द ने शहर में एक आलीशान हवेली तामीर कराई थी और उसकी बोस्की की सफ़ेद कमीस में सोने के बटन टँगे हुए थे और अब वह मीरपुर के आधे बाज़ार का मालिक था और कई गली मुहल्लों में उसके मकान थे और राज-दरबार में उसकी बड़ी इज्ज़त थी। अब की सरकार ने जो मीरपुर में मोटर की सड़क बनाने का

फ़ैसला किया तो उसका ठीका भी करमचन्द को ही मिला। यह सड़क जो गाटालियाँ से मीरपुर और मीरपुर से कोटली तक जाती है, और रास्ते में छोटी मसजिद को मौलवी साहब के कोटले से मिला देती है। इस ठीके से करमचन्द ने लाखों रुपया कमाया बल्कि यों कहिये कि लाखों रुपया काटा। और वह अब जंगलों के ठीके लेने लगा और झेलम नदी के ज़रिये झेलम शहर के बड़े काठगुदाम तक लकड़ी भेजने लगा। उसने झेलम में भी आढ़त की दूकान खोल ली। तीन मोटरें रख लीं और मीरपुर में एक गुरुद्वारा, एक मन्दिर और एक पाठशाला बनवाया। अब उसने पढ़ना-लिखना भी ख़ासा सीख लिया था और अब वह हमेशा अपने दस्तख़त यों किया करता था—

लाला करमचन्द आढ़ती, रईस मीरपुर

जिन दिनों मोटर रोड मीरपुर से छोटी मसजिद तक पहुँची थी, वह एक रोज़ देख-भाल के लिये छोटी मसजिद गया था। उस रोज़ वह पैदल नहीं गया था, ख़च्चर पर भी सवार न था, वह अपनी मोटर में ख़ुद बैठकर, उसे ख़ुद चला कर छोटी मसजिद गया था। यहाँ वह दिन भर अपने काम में इस क़दर मसरूफ़ रहा, इंजीनियरों और ओवरसियरों से सलाह-मशविरा करता रहा, मज़दूरों और ख़लासियों के झगड़े निपटाता रहा और इसी मसरूफ़ियत के आलम में उसे करमदाद से मिलना भी याद न रहा! हालाँकि करमदाद का घर तालाब के किनारे पर ही था और तालाब के किनारे से ही मोटर रोड गुज़रती थी और तालाब के किनारे इंजीनियरों और ओवर-सियरों के तंबू लगे हुए थे। अगरचे वह करमदाद से न मिल सका लेकिन करमदाद ने उसे दूर ही से अपने खेतों में से देख

लिया था और उसे देख कर वह वहीं से चिल्ला उठा था—"अबे ढोलकी के, नमकचोर के तुख़्मे बेपीर !" लेकिन उसकी आवाज़ करमचन्द तक न पहुँची थी और उसने इधर कोई ध्यान न दिया था। और इसके बाद भी करमदाद ने करमचन्द से मिलने की बड़ी कोशिश की लेकिन इंजीनियर लोग और दूसरे बड़े-बड़े आदमी सेठ की मोटर को इस तरह घेरे हुए थे और वह मोटर इस तरह यहाँ से वहाँ उड़ती थी कि करमदाद किसी तरह भी हज़ार कोशिश करने के बावजूद अपने दोस्त करमचन्द से न मिल सका और करमचन्द अपने दोस्त करमदाद से मिले बग़ैर वापस मीरपुर चला गया और वापस मीरपुर जाकर भी उसे ख़याल न आया कि छोटी मसजिद में करमदाद भी रहता है जिससे वह आज मिलकर नहीं आया। आज उसकी ज़िन्दगी में कोई अजीब बात नहीं हुई थी। लेकिन करमदाद को छोटी मसजिद में यह बात बहुत अजीब और बुरी सी लगी और वह बहुत देर तक उसे नहीं भूल सका।

[३]

एकाएक टेलीफ़ोन की घन्टी बजते-बजते बन्द हो गई। करमचन्द ने कोशिश की—"हलो......हलो......" ख़ामोशी। करमचन्द ने घबरा कर बत्ती जलाई लेकिन आज बत्ती भी नहीं जली। चारों तरफ़ सन्नाटा था। ऐसी ख़ामोशी जैसे अब कहीं कुछ न होगा। फिर कहीं से किसी के भागने की आवाज़ आई। कोई तेज़-तेज़ क़दमों से उसकी तरफ़ भागा-भागा आया। कहने लगा—"हमलावर आन पहुँचे। शहर पर हल्ला बोल रहे हैं।"

कहाँ पर हैं ?" करमचन्द ने घबरा कर पूछा।

'वह नीचे ढेकी तक पहुँचे हैं। अभी आया चाहते हैं।"

'कितने आदमी हैं ?"

'कोई दो हज़ार होंगे। अगर जान बचानी है तो भागो।"

करमचन्द पुलीस चौकी में बैठा था। यहाँ पर सूरत हाल के बारे में पूछगछ करने आया था। वह इस वक़्त सिर्फ़ एक क़मीस और पायजामा पहिने था। उसे एकाएक अपनी हरी-भरी दूकान का ख़याल आया, अपनी आलीशान हवेली का ख़याल आया, मीरपुर के मुहल्लों और बाज़ारों में फैले हुए मकानों और दूकानों का ख़याल आया, और फिर आख़ीर में उसे अपनी तिजोरी का ख़याल आया जिसके अन्दर सोने की ईंटें थीं। पुलीस चौकी में सिर्फ़ एक सिपाही बैठा था। करमचन्द ने उससे पूछा—"अब क्या होगा ?"

सिपाही ने कहा—"अब क्या हो सकता है। हम लोग तादाद में बहुत कम हैं।"

करमचन्द पुलिस चौकी से बाहर आया। बाहर आकर उसने देखा, सब लोग भाग रहे हैं। करमचन्द भी भागा। पहले वह झेलम जाने के लिये पच्छिम की तरफ़ भागा लेकिन उधर से हमलावर आ रहे थे। फिर वह कोटली जाने के लिये पूरब की तरफ़ भागा, लेकिन कोटली भी हमलावरों के क़ब्ज़े में थी। टीले पर शहर आबाद था और नीचे खेत फैले हुए थे और सामने जली हुई पहाड़ियाँ थीं। करम चन्द भागता-भागता खेतों की तरफ़ निकल गया।

आधी रात के क़रीब करमचन्द खेतों में से होता हुआ, सूखे नालों से चलता हुआ, वीरानों से गुज़रता हुआ छोटी

मस्जिद के तालाब के पास पहुँच गया। रास्ते में उसे दूर से गोलियों के चलने की आवाज़ सुनाई देती रही। और आदमियों की चीखें और कराहने की आवाज़ें, और लारियों का शोर सड़क पर बढ़ता गया। और फिर मीरपुर के टीले से आग के शोले बुलन्द होते गये। और फिर सारा पच्छिमी आसमान सुर्ख़-सुर्ख़ रोशनी में उबलने लगा। तालाब के किनारे बैठे हुए उसे तालाब के पानी में पच्छिमी आसमान की सुर्ख़ रोशनी का अक्स नज़र आया। और उसके पसेमंज़र (पृष्ठ भूमि) में मसजिद के मीनार और कंगुरे नुमायाँ होते गये और करमचन्द ने सोचा कि उसका मकान जल गया है, उसकी दूकान लुट गई, उसकी हवेली बरबाद हो गई है, उसकी तिजोरी खोल डाली गई है और अब उसके पास इन दो कपड़ों के सिवा और कुछ नहीं है जिन्हें पहिन कर वह अपनी जान बचा कर भी यहाँ से न ले जा सकेगा।

करमचन्द आहिस्ता से उठा और करमदाद के मकान पर दस्तक देने लगा। बहुत देर के बाद दरवाज़ा खुला। वह भी ज़रा सा दरवाज़ा खुला और कोई दरवाज़े के पीछे से बोला—"कौन है ?"

करमचन्द ने आवाज़ पहिचान ली। काँपते हुए धीरे से बोला—"दरवाज़ा खोलो करमदाद। मैं हूँ तुम्हारा दोस्त करमचन्द।"

करमदाद ने सारा दरवाज़ा खोल दिया और करमचन्द के गले से लिपट कर बोला—"अबे नमक चोर के बेटे, तुख़्मे बे पीर। आख़िर आ गया न ठिकाने पर। देख बाली, कौन आया है। उठ बाली, देख कौन आया है। मेरा दोस्त करम चन्द आया है। देख, मैंने कहा था, एक रोज़ करमचन्द

ठिकाने पर आ जायगा। वह हज़ार बार बेईमान हो जाय, वह फिर ठिकाने पर आ जायगा। वह मेरा दोस्त है।"

करमचन्द ने कहा—"आहिस्ता बोलो, कोई मेरा नाम सुन लेगा, तो मैं जान से मार डाला जाऊँगा।"

करमदाद ने कहा—"कौन डोलकी का तुझे मेरे जीते जी हाथ लगा सकता है। उठ बाली, रोटी पका। जल्दी से रोटी तैयार कर दे।"

बाली ने मुस्कराकर कहा—"आज मैंने एक आदमी का खाना अलग रख दिया था। मेरा दिल कहता था, आज का दिन ऐसा है कि किसी न किसी को यहाँ आना ही चाहिये।"

करमदाद ने ख़ुश हो कर बाली को छाती से लगा लिया।

बाली ने रोटी सामने रख दी। करमचन्द की आँखों में आँसू आ गये। वही सादा सा खाना था—बाजरे की रोटी, थोड़ा सा मक्खन मीठा सा साग और लस्सी का भरपूर छन्ना......

(४)

सुबह उठते ही करमचन्द ने अपने सोने के बटन क़मीस से निकाल कर अलग कर दिये और उन्हें करमदाम को देते हुए कहने लगे—"अब मेरे पास इनके सिवा कुछ नहीं है। इन्हें ले ले और मुझे किसी तरह जम्मू पहुँचा दे।"

करमदाद ने उसके सिर पर धप जमाई और बटन उठाकर बाहर खेतों में फेंक दिया। बोला—"मेरे खेत सोना उगलते हैं। तू मुझे यह झूठा सोना क्या देगा। उठा हल और चल खेत में काम कर। बहुत भटक चुका। अब मैं तुझे कहीं नहीं जाने दूँगा।"

करमचन्द और करमदाद ने एक दूसरे की तरफ़ देखा। दोनों देर तक एक दूसरे की तरफ़ देखते रहे। फिर करमचन्द ने आहिस्ता से हल उठाकर अपने कन्धे पर रख लिया। करमदाद ने मुस्कराकर बैलों की जोड़ी संभाली और दोनों साथ-साथ घर के आँगन से बाहर निकल गये।

बाली उन्हें यों जाते देख कर ऊँची-ऊँची आवाज़ में गाने लगी।

कश्मीर को सलाम

यह बात कि कश्मीर जन्नत नजीर है, मुझे उस वक़्त तक नहीं मालूम हुई, जब तक मैं उस जन्नत से बाहर निकाला नहीं गया। मेरा मतलब यह है कि मैं चूँकि बचपन ही से कश्मीर में रहता बसता चला आया था, इस लिये मेरे लिये कश्मीर के उपवनों की सुन्दरता, उसकी घाटियों की मनोहरता, उसकी झीलों की ख़ुबसूरती और उसके पहाड़ों की फबन और मोहिनी कोई अचंभे की बात नहीं थी। मैं समझता था, शायद दुनिया में इसी तरह की ख़ूबसूरती होती होगी, ऐसे सुन्दर दृश्य हर जगह पाये जाते होंगे, हर जगह डूबता हुआ सूरज इसी तरह झीलों में सोना रोलता होगा, इसी तरह शबनमी धुँधलकों में किसी अनजान घाटी पर लाखों रंगबिरंगे फूल खिल जाते होंगे। पहाड़ के ऊँचे-ऊँचे पेड़ों का झुण्ड इसी तरह किसी ख़ामोश रहस्यमय दर्रे पर

खड़ा एक पहाड़ी सिलसिले को देखता हुआ शहद के छत्तों में काम करती हुई मधुमक्खियों की गूंज से चौंक पड़ता होगा, जिस तरह ऊषा के अक्स से लाल डल में चप्पो चलाती हुई किसी नाज़ुक बदन कश्मीरी सुन्दरी के हाथों से बर्फ़पोश चोटियों का अक्स चौंक कर टूट जाता है। यह और ऐसे हज़ारों सुन्दर दृश्य दूसरी जगहों पर भी पाये जाते होंगे। ऐसा मैं अपने बचपन में, अपने लड़कपन में और अपनी जवानी के पहले दिनों में सोचता था।

लेकिन जब मैं ऊँची तालीम हासिल करने के लिये अपने माँ बाप की मर्ज़ी से कश्मीर से बाहर गया, उस वक़्त मुझे मालूम हुआ कि मैं कितना ग़लत सोचा करता था। जन्नत की क़द्र जन्नत से बाहर निकल कर ही मालूम होती है। यह बात न थी कि कश्मीर से बाहर दुनिया सुन्दर न थी, सारी दुनिया ख़ूबसूरत है, सुन्दरता, मनोहरता और मोहिनी दुनिया के हर कोने में है, लेकिन प्रकृति की जो सुन्दरता, निखार और रंग मैंने कश्मीर में देखा है, कहीं और नहीं देखा। इससे अच्छे और सुन्दर रूप में कभी नहीं देखा। मुमकिन है यह मेरे बचपन का ख़याल हो और आप जानते हैं कि बचपन के ख़यालात कितने मज़बूत होते हैं, वे किस तरह मन के कोने-कोने में अपनी जड़ें फैलाते हैं। मैंने ऐसे दोस्तों को भी देखा है, जो अपने गाँव के इमली के झाड़ का ज़िक्र भी इसी अन्दाज़ से करते हैं, जिस अन्दाज़ से मैं कश्मीर की पुष्पाच्छादित घाटियों का ज़िक्र करता हूँ। शायद जन्नत कहीं इन्सान के दिल के बाहर नहीं है, वह उसके दिल के अन्दर है। अगर ऐसा है तब भी मुझे यह कहने में संकोच नहीं है कि मेरे दिल के अन्दर जो जन्नत है वह कश्मीर है।

आजकल मैं उस जन्नत से बहुत दूर रहता हूँ लेकिन फिर भी उसकी याद किसी सदा बहार फूल की तरह दिल में हर वक़्त महकती रहती है और जब मैं सुबह के वक़्त फूले-फूले सफ़ेद पालों वाली किश्तियों के परे समुन्द्र में सूरज की किरनों का अपना सुनहरा जाल फेंकते हुए देखता हूँ तो मुझे वह सुबह याद आ जाती है जब मैंने पहली बार दुल्लर झील को देखा था। जब हलकी-हलकी धुंध एक रेशमी आँचल की तरह बार-बार गालों से छू जाती थी और झील की नीली सतह शान्त थी और दूर-दूर नीले पहाड़ एक दायरे के रूप में फैले हुए थे। और चप्पो मेरे हाथ में रुक गया था और मेरी किश्ती के क़रीब नीलोफ़र के फूल आश्चर्य से मुझे देख रहे थे और दूर, एक बड़ी सी किश्ती में एक मल्लाह बैठा था और उसकी पत्नी एक बच्चे को गोद में लिये खड़ी थी और उधर देख रही थी जिधर से सूर्योदय होता है। मुझे उस समय वह माँ साकार आशीर्वाद मालूम हुई। जैसे धरती माँ हो और आकाश सृष्टि का मन्दिर हो। और बच्चा खिलखिला कर हँस पड़ा और सारी दुनिया जाग गई और मुझे ऐसा मालूम हुआ जैसे मल्लाह का चप्पू और नीलोफ़र के काँपते हुए फूल और झील की ख़ामोश सतह और पहाड़ों की नीली चोटियाँ साँस रोके उस हँसी का इन्तज़ार कर रही थीं। सूरज निकला, बच्चा हँसा और दुनिया जाग गई और रंगीन हो गई।

याद की सुरमयी घाटियों में कश्मीर के कई नगीने चमक उठते हैं। बहराम गले से परे एक घाटी थी जहाँ मैं रास्ता भटक कर आ निकला था। मकई का एक ढलवान खेत था जिसमें फ़सिल अच्छी तरह से फूली-फली नहीं थी। मकई के पौदे छिदरे-छिदरे थे और आड़े तिर्छे उगे हुए थे। खेत के बीच में

एक मचान था जो भूरी घास से छता हुआ था, लेकिन मचान पर कोई न था। दोपहर का वक़्त था और मुझे बड़ी ज़ोर की भूख लग रही थी, मैं आगे बढ़ता चला गया। आगे घास का एक लम्बा सा टुकड़ा था जिसमें डेफ़ो डोल के पीले-पीले फूल खिले हुए थे। उससे आगे ऊँचाई पर आलूचे का पेड़ था जो सफ़ेद-सफ़ेद फूलों से भरा हुआ था और उसके क़रीब एक छत थी जिस पर उस घर के लोग खाना खा रहे थे। एक बूढ़ा मोची था जिसकी सफ़ेद दाढ़ी थी और ताँबे ऐसी रंगत थी, एक उसका जवान बेटा था, जिसकी नीली आँखों में एक आशामयी मुस्कान थी। एक उस जवान बेटे की ख़ूबसूरत पत्नी थी, जिसकी गोद में एक प्यारा सा बच्चा था, दो बहनें थीं; एक उनका छोटा भाई था जिसने सिर्फ़ एक मैली चिकट सी क़मीस पहिन रक्खी थी और जो मुझे देख कर खाते-खाते ठिठक गया था और फिर हँसने लगा था और चावल और कड़म का साग उसकी उंगलियों से लगा हुआ था और उसकी आँखों में वह हैरत थी जो अजनबी को देखकर होती है और होठों पर वह मुस्कराहट थी जो डर से नहीं, बेफ़िक्री से पैदा होती है। मुझे देखकर बूढ़ा मोची मुस्कराया। उसने मुझसे यह भी नहीं पूछा कि तुम कौन हो, कहाँ से आये हो, किधर जा रहे हो, तुम्हारा नाम क्या है, तुम्हारा धर्म क्या है ? और उसने मुझे खाने को कहा और मैं वहीं उस सुर्ख़ बजरी की छत पर बैठ कर उन लोगों के साथ खाना खाने लगा और एक बहन ने मेरे सामने मिट्टी के प्याले में चावल और साग रख दिया और सफ़ेद मक्खन का एक गोला और सुर्ख़ पिसी हुई मिर्चें और नमक, और मैं खाने लगा। और हम लोग इस तरह बातें करने लगे जैसे वे लोग बरसों से मुझे जानते हों, जैसे मैं

उनके कुटुम्ब का ही एक सदस्य हूँ। और फिर खाना खा के बूढ़ा मोची एक छोटे से रंदे से चमड़ा कमाने लगा और जवान बेटा खुली हुई धूप को तेज़ समझकर आलूचे के पेड़ के नीचे बैठकर एक पुराने जूते में तल्ला लगाने लगा और मुझसे बातें करने लगा। उसकी पत्नी भी हमारे पास आ बैठी और चादर की ओट में अपने बच्चे को छिपाकर दूध पिलाने लगी और जवान मोची मुझ से कहने लगा—"अबकी मकई की फ़सिल अच्छी नहीं हुई, उसे ओले मार गये हैं और घास भी जगह-जगह से बैठ गई है।" इतने में वे दोनों शरीर बहनें आलूचे के पेड़ पर चढ़ गईं और डालियाँ हिला हिलाकर उन्होंने इतने फूल हम पर बरसा दिये कि हम सफ़ेद-सफ़ेद फूलों से लद गये और छत के दूसरे कोने के क़रीब खुली धूप में बैठा हुआ बूढ़ा मोची हँसने लगा। खुली धूप में उसके सफ़ेद दाँत दमक रहे थे और उसके ताँबे की रंगत के गाल चमक रहे थे, और उसकी गहरी नीली आँखें चमक रही थीं और वे दोनों शरीर बहनें हम पर फूल बरसा रही थीं, और जवान मोची के सर पर फूल थे, जूते के तल्ले के ऊपर फूल थे, फूल मेरी ऐनक की कमानी पर अटक गये थे और फूलों से उस औरत की चादर भर गई थी और उसके बच्चे के नन्हे-नन्हे पाँव फूलों में गुँथे हुए मालूम होते थे। और जब मैं सुस्ता चुका तो मैंने उस बूढ़े मोची को और उसके बेटे को और उसकी पत्नी को सलाम किया और फिर वे दोनों शरीर बहनें और उनका छोटा भाई, जिसने सिर्फ़ एक मैली चिकट क़मीज़ पहन रक्खी थी, और जो मेरी ऐनक की तरफ़ देखकर हँसता था, वे तीनों मुझे ढलवान से आगे रास्ता बताने के लिये आये और जब वे मुझे रास्ते पर लगा चुके तो चश्मे के किनारे खेलने बैठ गये

और शायद दूसरे ही क्षण मुझे भूल गये । लेकिन मैं उन्हें नहीं भूला हूँ । वह बेलौस हँसी, वह पाक मुहब्बत, प्यार व मुहब्बत की वह पवित्र निशानी, जो इस ज़िन्दगी के सफ़र में एक इन्सान दूसरे इन्सान को देता है, वह आज भी मेरे सीने में उसी तरह सुरक्षित है ।

मुझे कश्मीर गये हुए मुद्दतें गुज़र गईं । इस अरसे में कश्मीर बहुत कुछ बदल चुका है । क्योंकि यह जन्नत नज़ीर मुल्क इन्सानी जन्नत है और इन्सानों की जन्नत हमेशा बदलती रहती है । मैंने उस ज़माने में भी इस स्वर्ग में नरक के दहकते हुए अंगारे देखे थे, दुख और दरिद्रता की साकार मूर्तियाँ, ग़रीबी के भयानक चित्र, जन्नत के हुस्न की ख़रीद बिक्री । मैं जानता था यह दहकते हुए अंगारे एक दिन भड़क कर ज्वाला मुखी बन जायँगे और यह लावा दूर-दूर तक कश्मीर के सुन्दर उपवनों और घाटियों में फैल जायगा । और वही हुआ जिसकी मुझे आशंका थी, और कश्मीर की सुन्दर घाटी ख़ाक व ख़ून में लुथड़ गई ।

और आज मैं अपनी जन्नत नज़ीर कश्मीर से बहुत दूर बैठा हूँ और आज मैं नहीं कह सकता कि वह माँ कहाँ है जो सूर्योदय से पहले डुल्लर झील के बीच में अपने नवजात शिशु को लिये साकार आशीर्वाद बन कर खड़ी थी । उसका वह पति कहाँ है, जो दोनों हाथ चप्पुओं पर रक्खे उसी किश्ती में बैठा था और अपनी पत्नी को प्यार भरी नज़रों से देख रहा था । आज मैं नहीं कह सकता कि कश्मीर की इस महान कशमकश ने उन्हें कहाँ पहुँचा दिया है, लेकिन वह जहाँ कहीं भी हों, उन्हें मेरा सलाम पहुँचे ।

आज मुझे फिर वह आलूचे का पेड़ याद आता है और मकई के खेतों में भूरी घास से छता हुआ मचान, और सुर्ख़ बजरी की छत पर बैठा हुआ बूढ़ा मोची, जो रन्दे से चमड़ा कमा रहा है। आज फिर मेरे सर के ऊपर आलूचे के सफ़ेद-सफ़ेद फूल गिर रहे हैं और मेरे कानों में उन दोनों शरीर बहनों की हँसी है और उस लड़के की आश्चर्य-मिश्रित मुस्कान है जिसने सिर्फ़ एक मैली चिकट क़मीज़ पहन रक्खी है और जिसकी उंगलियों में सफ़ेद चावल के दाने और कड़म का साग लगा हुआ है। मैं नहीं जानता वे लोग आज कहाँ हैं, लेकिन वे जहाँ भी हों, उन्हें मेरा सलाम पहुँचे।

शायद वह आलूचे का पेड़ आज फूलों से लदा न हो, यह भी हो सकता है कि मकई के ढलवान खेत में किसी ने हल न चलाया हो, शायद वह बूढ़ा मोची अपने घर की सुर्ख़ बजरी की छत पर चमड़ा नहीं कमा रहा बल्कि सड़क के किनारे पत्थर कूट रहा है और उसका बेटा इस महान कशमकश में अपनी बहनों की इज़्ज़त के लिये लड़ते-लड़ते मारा गया है, शायद आज मकई के खेत में घास से छते हुए मचान पर एक विधवा बैठी है जिसकी काली चादर में नया कश्मीर दूध पी रहा है।

हो सकता है यह सब कुछ सही हो, लेकिन मैं इतना ज़रूर जानता हूँ कि कश्मीर हमेशा जन्नत नज़ीर रहेगा। इस ख़ाक ख़ून में लुथड़ी हुई घाटी को उसके बच्चे फिर से ख़ुद बसायेंगे, आलूचे के पेड़ में फिर से फूल खिलेंगे, मकई के खेतों में सुनहरे दानों वाले भुट्टे फिर से नज़र आयेंगे, मिट्टी के प्याले में चावल और साग और मक्खन होगा और बहनों की हँसी होगी और भाइयों के ठहाके—!

फ़ीरोज़पुरी नाले के ऊपर एक पनचक्की है, यहाँ पत्थर के दो पाट तेज़ी से घूम रहे हैं, पानी पनचक्की से झरने की तरह गिर रहा है, पास ही घास के टुकड़े में लम्बे-लम्बे डंठलों पर बड़े-बड़े सफ़ेद फूल झुके हुए हैं और सारी फ़िज़ा में सौंफ़ के पौदों की ख़ुशबू है। मैंने इस जगह पर लेटे-लेटे गोर्की का उपन्यास 'माँ' पढ़ा था।

आज मैं फिर वहीं जाना चाहता हूँ और उसी पनचक्की के क़रीब बैठ कर वही उपन्यास पढ़ना चाहता हूँ क्योंकि मेरा विश्वास है कि कश्मीर की धरती गोर्की की 'माँ' है वह धरती मेरी माँ भी है और लोग कहते हैं कि माँ के क़दमों तले जन्नत होती है।

—:o:—

बालकोनी

मैं जिस होटल में रहता था उसे 'फ़िरदौस' कहते थे। यह एक तीन तल्ला मकान था और चील की लकड़ी का बना हुआ था। दूर से होटल के बजाय कोई पुराना जहाज़ मालूम होता था। मेरा कमरा बीच के तल्ले पर पच्छिमी कोने पर था और उसकी बालकोनी में से गुलमर्ग का गाफ़कोर्स, नैडोज़ होटल और देवदार के दरख़्तों में घिरे हुए बंगले और उनके परे खिलनमर्ग का ऊँचा मैदान और उससे भी परे अल्पथर की चोटी साफ़ नज़र आती थी। गुलमर्ग की ऊषा मुझे बहुत पसन्द है और यहाँ से ऊषा का दृश्य बहुत भला मालूम होता, इसलिये भी मैंने इस कमरे में रहना पसन्द किया। बहुत से लोग जो यों ही बेसमझे-बूझे कमरे किराये पर ले-लेते थे, बाद में मेरी बालकोनी की तरफ़ हसरत भरी निगाहों से देखते

और मुझसे इजाज़त लेकर मेरी बालकोनी से सूर्यास्त का नज़ारा देखने आया करते। इस तरह बहुत से ऐसे लोगों से मुलाक़ात हो गई, जिनका मैं अभी इस ख़त में ज़िक्र करूँगा। इन लोगों में बैंकर भी थे और व्यापारी भी, ठीकेदार भी थे और पाँच बच्चों वाली माएँ भी, तालिबइल्म भी थे और तालिबे दीदार भी। तरह-तरह के लोग, मराठे, ईरानी, एंगलो-इंडियन, डोगरे, पंजाबी, देहलवी, अलग-अलग ज़बानें, अलग लिबास, अजीब-अजीब बातें, अनोखे तबस्सुम, निराले क़ह-क़हे—दुनिया की सारी अजीब चीज़ें उस बालकोनी में इकट्ठी हो गई थीं और ये सब अजीब लोग सूरज डूबने का नज़ारा देखना पसन्द करते थे। ये बड़े ग़ैर रूमानी लोग थे। इनकी ज़िन्दगी का मक़सद रुपया था, लेकिन ये लोग अक्सर हालतों में दो हज़ार मील चलकर गुलमर्ग की ऊषा देखने आये थे। मशीनी युग में हर इन्सान रुपया चाहता है, पूँजीवाद ने उसकी ज़िन्दगी को तल्ख़, उसके दिल को कमीना, उसकी रूह को गन्दा बना दिया है। लेकिन ख़ूबसूरती की अनुभूति अभी मिटी नहीं। वह इन्सान की कायनात के किसी कोने में किसी ज़ख़्मी रंग की तरह अभी तक तड़प रही है। नहीं तो ऊषा देखने के लिये इतनी बेचैनी क्यों? वे लोग शाम को ऊषा को देखते थे और मैं उनके चेहरों को देखता था। वही चेहरे जो दिन में उदास, भूखे और सहमे हुए नज़र आते थे, उस समय किसी अनजाने, अनदेखे नूर की चमक से जगमग करते मालूम होते थे। उनके चेहरों की कुटिलता और आँखों की गुज़रिमों की सी कैफ़ियत एक अजीब शान्तिमय, जादूभरी ख़ुशी में बदल जाती थी। वे उस ऊषा को ऐसी भूखी दृष्टि से देखते जैसे बच्चे कल्पना में अपनी परियों और राजकुमारियों के महल को देखते हैं। और वह औरत, जो पाँच बच्चों की माँ

थी, और जिसके चेहरे पर उसके शौहर की जालिमाना भूख ने झाइयाँ पैदा कर दी थीं, अपने लुटे हुए हुस्न को दोबारा हासिल कर लेती थी और उस समय उसके अधखुले होंठों की फबन उसे सचमुच किसी परिस्तान की मलिका बना देती थी। यह चीज़ कितनी आनन्ददायक है कि इन्सान के दिल में अभी तक वह बेचैन शोला तड़पता है, उसके दिल का शायर, उसकी कल्पना का बच्चा, उसके परिस्तान की मलिका अभी तक ज़िन्दा है और जब तक वह ज़िन्दा है इन्सान भी ज़िन्दा है। पूँजीवाद ज़ालिम समाज, साम्राज्यवाद, तानाशाही, दुनिया का ज़ालिम से ज़ालिम निज़ाम भी उसे मिटा नहीं सकता। मैं इन्सान के भविष्य से निराश नहीं हूँ।

फ़िरदौस अमीर घुमक्कड़ों की नज़र में एक घटिया, सस्ता सा होटल था, लेकिन मेरे लिये फिर भी महँगा था।

लेकिन क्या करता। किसी हिन्दुस्तानी होटल में जगह ख़ाली न थी। लाचार यहाँ आना पड़ा। फ़िरदौस में जो लोग ठहरे थे उनमें आधे से ज़्यादा पच्छिमी थे और बाक़ी एशियाई। बैरे एक अजीब क़िस्म की ज़बान बोलते थे जो न अंगरेज़ी थी न हिन्दुस्तानी बल्कि दोनों के नाजायज़ ताल्लुक़ से पैदा हुई थी। खाना छूरी काँटों के साथ खाया जाता था, लेकिन अक्सर छुरियाँ गोठिल मिलती थीं और काँटे बेक़लई। और शोरबे में हिन्दुस्तानी खाने की तरह लाल मिर्चों की इतनी भरमार होती कि बेचारी लंकाशायर की रहने वाली आयाओं और नर्सों की ज़बान जलने लगती और वे होटल के बैरे को ऐसी सलवातें सुनातीं कि वह ख़ुशी से अपनी छाती का उभार और भी बढ़ा लेता। बैरे की ख़ुशी का राज़ यह है कि उसे जितनी गालियाँ मिलें वह उतना ख़ुश रहता है और बैरा जितना बड़ा हो उसे उतनी ही

बड़ी गाली चाहिये वरना वह नाख़ुश रहेगा और दो-एक दिन के बाद उदास हो कर होटल से चला जायगा। गाली और बख़शीश बैरे की ज़िन्दगी की धुरी हैं। कभी उसे पहले गाली मिलती है फिर बख़शीश, क़भी पहले बख़शीश बाद में गाली। हर हालत में वह .ख़ुश रहता है। और अंगरेज़ों की राजनीति की यह सबसे बड़ी ग़लती है कि वह अपने बैरों से क़ौम का अन्दाज़ा करते हैं। वे पूरी हिन्दुस्तानी क़ौम से अपने बैरों का सा व्यवहार करते हैं और चाहते हैं कि हिन्दुस्तानी भी उनसे उनके बैरों की तरह .ख़ुश रहें। अब उन हिन्दुस्तानियों की बदमज़ाक़ी को क्या कहियेगा कि वे किसी भी हालत में सन्तुष्ट नहीं नज़र आते। वे न गाली पसन्द करते हैं न बख़शीश।

होटल का मैनेजर एक मुसलमान कश्मीरी था। अहद जू। दूबला पतला कश्मीरी, बी० ए० पास, होंठों पर निराशा की राख, आँखों में उन तमाम ख़्वाबों की हसरत, जो पूरे न हुए, चालीस रुपये तन्ख़ाह। होटल का मालिक अली जू बढ़ई था, जिसने यह होटल बड़ी मेहनत से जंगल से लकड़ियाँ चुरा चुरा कर बनाया था। आप चोर था इसलिये होटल के मैनेजर को भी चोर समझता था। हर रोज़ बिला नाग़ा फ़िरदौस के हिसाब-किताब की पड़ताल करता। दूध, मक्खन और शहद अपने हाथ से बाँटता, लेकिन इसपर भी उसकी तसल्ली न होती अधिक निगरानी के लिये उसने एक सिक्ख नौजवान को भी नौकर रख लिया और अब पाकिस्तान और ख़ालिस्तान एक दूसरे के क़रीब रहते हुए एक दूसरे से डरने लगे, निगरानी से ईमान में आप ही आप फ़र्क़ पैदा होने लगा, सीधी सादी बातों में फ़रेब नज़र आने लगा, दिल आप ही आप बेईमानी की तरफ़ झुकने लगा। हर वक़्त, हर तरफ़ से शक शुबहे का तूफ़ान

उमँडता हुआ दिखाई देने लगा। आँखों की खूबसूरती और मासूमियत ज़ायल होगई। अब आँखें कनखियों से देखने की आदी होगई। दिल अपने गुस्से और अपने दुश्मन को क़त्ल करा देने की जयज़ तमन्ना को एक झूठी अस्वाभाविक मुस्कराहट छुपाने लगा। होते होते यह निगरानी इस हद तक बढ़ गई कि मैनेजर और मुखबिर साये की तरह एक दूसरे का पीछा करने लगे और होटल का सारा इन्तज़ाम बड़े बैरे के हाथों में चला गया। हिन्दुस्तान का इतिहास फ़िरदौस में भी अपने आप को दोहरा रहा था।

बड़ा बैरा हर वक़्त मुस्कराता रहता था। ख़ासकर बख़्शीश के वक़्त तो उसकी अजीब हालत होती थी। उस वक़्त मुझे वह वज़न मापने वाली झिरीदार मशीन याद आ जाती। इधर झिरी में एक आना डाला और दूसरे ही क्षण खट से टिकट निकल आता जिस पर वज़न लिखा होता था। बस यही हालत बड़े बैरे की थी। इधर आपने बख़्शीश उसके हाथ में थमाई और खट से बत्तीसी हाज़िर। मुझे उस मुस्कराहट से एक तरह का इश्क़ होगया था और मैं बख़्शीश के इस मशीनी प्रभाव को देखने के लिये बैरे को अक्सर टिप दिया करता। किस तेज़ी से वह बत्तीसी खुलती थी, बिजली की सी तेज़ी से। वह वज़न मापने वाली मशीन भी तो इतनी जल्दी काम न करती थी। जो लोग यह कहते हैं की मशीन आदमी से अधिक तेज़ चलती है, उन्हें फ़िरदौस के बड़े बैरे को देखना चाहिये।

फ़िरदौस के बड़े भिश्ती का नाम अब्दुल्ला था। अब्दुल्ला एक उजड्ड कश्मीरी किसान था। बदसूरत, बेढंगी चाल, आँखों के गिर्द बड़े-बड़े हल्क़े, सुर्ख़ गालों पर नीली धारियाँ बाहर

उभरी हुई। सामने के दाँत ग़ायब, उम्र भी कोई साठ साल से ऊपर ही होगी। अब्दुल्ला का एक लड़का था, बाप के होते हुए भी यतीम सा मालूम होता था। उम्र ग्यारह बारह बरस, हाथ-पाँव सख़्त मैले, घुटनों तक ऊँचा पायजामा। क़मीस की बाहें फटी हुई, हाँ, आँखें कँवल की तरह रोशन थीं। बड़ी-बड़ी आँखें और मासूम चेहरा। बाल बढ़े हुए और परेशान, और गर्दन पर मैल की तहें। एक मासूम रूह, जो ग़रीबी के कीचड़ में धँसी हुई थी, बाहर न निकल सकती थी और मदद के लिये चिल्ला रही थी। उसे सब लोग छोटा भिश्ती कहते थे। अब्दुल्ला अपने बेटे को प्यार से ग़रीब कहा करता था। अजीब नाम है। ग़रीब! यह नाम सुनकर मेरे जिस्म के रोंगटे खड़े हो जाते हैं। ग़रीबी दुनिया का सबसे बड़ा गुनाह है और दुनिया के किसी बाप को यह हक़ नहीं पहुँचता कि वह अपने बेटे को ग़रीब कहे। लेकिन शायद अब्दुल्ला एक हक़ीक़त को बयान कर रहा था। वह अपने बेटे को "मेरा राजा बेटा" कहकर अपने आपको और दुनिया को धोका न देना चाहता था।

होटल में एक और भिश्ती भी था, युसुफ़। शक्ल से कुंजड़ा दिखाई देता था। बड़ा बददिमाग़ भिश्ती था। हर रोज़ पिटता फिर भी गाली के बिना काम न करता। इसके अलावा वह चरस के दम भी लगाता था और औरतों की दल्लाली भी करता था। यूसुफ़ छोटे बैरे का बड़ा दोस्त था। छोटा बैरा एक गम्भीर क़िस्म का इन्सान था, बेहद फ़रमाँबरदार और सेवा करने वाला। 'जी' के सिवाय उसके मुँह से कभी कोई और कलमा नहीं सुना। आवाज़ और लहजे में मक्खन इतना घुला हुआ था कि आदमी के बजाय बनस्पति घी का डिब्बा मालूम होता था। इतनी भी ख़ुशामद क्या कि हर वक़्त हाथ जोड़ रहे हैं, मरे जा रहे हैं। बातचीत और चाल-ढाल में इस क़दर ख़ुशामद और

चापलूसी पैदा कर रहे हैं जो हर शरीफ़ इन्सान के लिये बेहद शर्मनाक है। मैंने ऐसी मीठी बातें करने वाला, चापलूस और चालाक इन्सान अपनी ज़िन्दगी में कभी नहीं देखा। यह भी औरतों का दल्लाल था, लेकिन सिर्फ़ अंगरेज़ औरतों या ऐंगलो इन्डियन छोकरियों की दलाली करता था। कभी-कभार किसी हिन्दुस्तानी फ़िल्म ऐक्ट्रेस का काम भी कर देता। उसका नाम था, क्या नाम था, भला सा नाम था—ज़ेहन में फिर रहा है, ज़बान पर नहीं आ रहा। हाँ, ज़माँ ख़ान! यह नाम मैं इस लिये लिख रहा हूँ कि मुमकिन है कभी तुम्हारे दिल में इस क़िस्म की ख़्वाहिश फिर जाग उठे और तुम फ़िरदौस में जा उतरो। हाँ, तो ज़माँख़ान का नाम न भूलना। एक ही हरामी है फ़िरदौस में।

इस जहाज़ नुमा होटल का बयान अधूरा रह जायगा अगर मैं यहाँ के एक स्थायी निवासी का ज़िक्र न करूँ। यह एक आयरिश बूढ़ा था और पिछले दस साल से गुलमर्ग में इसी होटल में ठहरा था। मलगजी दाढ़ी, आइनिस्टाइन का सा सर, वही उलझे हुए बाल, वही चौड़ा माथा। हाँ होंठों और नाक की तराश यहूदियों की सी न थी। नाक के दायें नथुने पर एक छोठा सा मस्सा था, जो उसके चेहरे की प्रतिभा को और भी स्पष्ट कर देता था। उसकी आँखों के रंग का मैं कभी ठीक तौर से अन्दाज़ा ना कर सका। कभी तो वह आकाश की गहराइयों की तरह नीली मालूम होतीं और कभी किसी पुरानी, ठहरी हुई झील के समान सब्ज़ दिखाई देने लगतीं और फिर उसके चेहरे पर किसी नामालूम से धुँधलके का गुबार हर वक़्त छाया रहता। उस धुंध के समान हलका सा जो अक्सर मेरे कमरे में गुलमर्ग के बादलों से छूटकर भागती हुई आ जाया करती थी। ओब्रायन (बूढ़े को सभी

ओब्रायन कहते हैं) कभी तो इस ग़ुबार में बिलकुल छिप जाता और कभी यह ग़ुबार इस क़दर मनोहर हो जाता कि उसकी धुंधली-धुंधली रूप रेखा के नीचे उसको ज़िन्दगी का व्यंगात्मक अन्दाज़ साफ़-साफ़ ज़ाहिर हो जाती। ओब्रायन ख़ूब पीता था और हमेशा अच्छी शराब पीता था और जब नशे में होता तब बहुत अच्छी बातें करता था। खिला हुआ अन्दाज़, सुलझे हुए दार्शनिक वाक्य, व्यंगपूर्ण वर्णन, जिनमें एक व्यक्तिगत अनुभव की सारी गहराई छिपी होती। वह कभी तो घन्टों बातें करता और कभी घन्टों चुप रहता। उसे न शिकार का शौक़ था न औरतों का, और यह अजीब बात है कि गोश्त भी न खाता था। हाँ पनीर का उसे बहुत शौक़ था। कहता था कि पनीर के एक टुकड़े पर मैं दस दिन ज़िन्दा रह सकता हूँ। तुम अभी बच्चे हो, जब मेरी उम्र को पहुँचोगे तब मालूम होगा कि औरत की जवानी में भी वह ताज़गी नहीं है जो इस पनीर के टुकड़े में और इस बादये नाब के एक क़तरे में। पियो, पियो, और पियो, और उस गुलमर्ग की ऊषा को देखो, जिसके उबलते हुए ख़ून में इस वक़्त पच्छिमी क्षितिज का हुस्न दो बाला हो गया है,......ओब्रायन फ़िरदौस का फ़लसफ़ी है। अगर कभी गुलमर्ग जाओ तो उससे ज़रूर मिलना। वह ज़िन्दगी की उन हक़ीक़तों को बयान करता है जिन्हें उसने अपनी ज़िन्दगी के ज़ख़्मों से निचोड़ा है। उसका बयान एक कड़ुआ रस है, एक रिसता हुआ ज़ख़्म है, एक ख़ौफ़नाक ज़हर की धारा है। लेकिन इस विष-जल की लहरों पर एक ऐसी मृत्यु-जन्य मुस्कान की छाया है कि तुम उससे प्रभावित हुए बिना न रह सकोगे... और अगर सच पूछो तो अभी तक ज़िन्दगी में इसके सिवा और है भी क्या ...?

अब्दुल्ला के बेटे को लिखने-पढ़ने का बहुत शौक़ था। वह

उर्दू का क़ायदा ख़त्म कर चुका था और अब उर्दू की पहली किताब पढ़ रहा था, जिसके पहिले सफ़े पर उसका बाप हुक़्क़ा पी रहा है। अब्दुल्ला को जब भी फ़ुरसत मिलती, वह अपनी कोठरी में जा कर हुक़्क़ा पीता, या कभी कभार जब मुझे फ़ुरसत मिलती तो बालकोनी में आ बैठता। उसका बेटा मुझसे सबक़ लिया करता और अब्दुल्ला अपने जीवन की रामकहानी सुनाता। यह कहानी उसने टुकड़ों में, खाँपों में, आँसुओं और मुस्कराहटों के बीच, नहाने के टब के पास खड़े हो कर, खाँसते हुए, दमे के रोग से जंग करते हुए सुनाई थी। यह कोई बड़ी रोमैन्टिक कहानी न थी, न कोई बड़ी दुखभरी कहानी थी, एक सीधे-सादे किसान की ज़िन्दगी थी, चन्द ख़ुशियाँ थीं और अनगिनत आँसू। वह एक किसान था, चन्द बीघे ज़मीन थी, जवानी में प्रेम भी किया था, शादी भी की, चन्द साल बहुत भले मालूम हुए, जीवन नृत्य सुवाहना था। मुसीबतें आईं लेकिन जवानी के ताज़े ख़ून ने उन्हें धो दिया। माँ-बाप के मरने के बाद उसने गाँव के महाजन का क़र्ज़ा चुकाया और खेतों की पैदावार बढ़ाने के लिये तरह-तरह की तरकीबें सोचने लगा। अपने खेतों का एक हिस्सा उसने फलदार पेड़ों की काश्त के लिये अलग कर दिया। दिल में उमंगें थीं, चाहता था कि वह मामूली किसान न रहे, गाँव का एक मालदार ज़मींदार बन जाय। अमीर बनने के लिये उसने महाजन से क़र्ज़ लिया लेकिन लगातार पानी और बर्फ़ का यह हाल रहा कि बाग़ पनप न सका। फिर अकाल पड़ा, ज़मीन बिक गई, बड़ा लड़का मर गया, पत्नी भी उसी अकाल की भेंट चढ़ गई, वह अपने छोटे और आख़िरी बच्चे को अपनी छाती से लगाये देश-विदेश घूमा, गालों का रंग उड़ गया, आँखों की चमक ग़ायब हो गई, दूकानों पर कोयला उठाते-उठाते दमे की बीमारी हो गई और अब खाँसी आती है, गले

में बलग़म फँस जाता है, गला रुँध जाता है, आँखें फटी पड़ती हैं। पाँच छः साल इधर-उधर घूमने के बाद स्वदेश आया, क्योंकि स्वदेश की मिट्टी हर भटकी हुई रूह को हर वक़्त वापस बुलाती रहती है। अब छः साल से वह इसी होटल में नौकर है। "ग़नीमत है यह ज़िन्दगी, अल्लाह का शुक्र है साहब, दो वक़्त रोटी मिल जाती है, साहब लोग इनाम भी देते हैं। यह मेरा बे माँ का बच्चा है ग़रीब। ख़ुदा इसकी उम्र लम्बी करे। याँह इसी तरह पड़ा रहेगा तो भिश्ती के सिवा और क्या बन सकेगा। दो चार हरफ़ पढ़ लेगा तो ज़िन्दगी सँवर जायगी। ख़ुदा आपको इसका बदला देगा। मेरे ग़रीब को सबक़ दे दीजिये। अच्छा अब मैं चलता हूँ। विलियम साहब के नहाने के लिये पानी रख आऊँ।"

ओफ़्फ़ोह, किस क़दर बेहया है यह दुनिया! कैसी मामूली सी ज़िन्दगी है। अब किन आशाओं पर आदमी जिये, हज़ारों लाखों, करोड़ों आदमियों की यही ज़िन्दगी है। हर मुल्क में, दुनिया के हर हिस्से में, कुछ एक व्यक्तियों और संस्थाओं को छोड़कर हम सब को अपनी सभ्यता पर, अपने धर्म पर, अपने कलचर पर, अपनी सूझ-बूझ पर, अपनी लियाक़त पर नाज़ है। यह हेकड़ी, यह रोब यह मुलम्मा साज़ी !......इन्सान के झूठ और अपने को धोखा देने की कोई हद नहीं है। और अब्दुल्ला को देखिये कि नाख़ुश है, खाँस रहा है, फिर भी जिये जा रहा है इस आशा में कि अगर दुनिया ने उसे पनपने का मौक़ा न दिया, अगर समाज के कोप ने उसक ज़िन्दगी की सारी राहतों और ख़ुशियों को उसकी आँखों के सामने गला घोंट कर उसे यों तरसा-तरसा कर मार डाला तो अब यही समाज, यही दुनिया, यही ज़िन्दगी का निज़ाम, उसके बेटे को पनपने का मौक़ा देगा। लेकिन अब्दुल्ला आख़िर इन्सान है, ज़िन्दगी की

कशमकश उनकी घुट्टी में है, लड़े जाता है। शाबाश बेटा, लड़े जा, मरे जा, एक दिन तेरा बेटा जवान होगा, उसकी लहकती हुई उमंगों की कामयाबी में तू फिर अमर हो जायगा, उसकी जवानी की ताज़गी में, उसकी प्रेम कहानियों में, उसकी ख़ुशी के जज़्बों में तेरी रूह अपने आपको पा लेगी।

बालकनी के मुलाक़ातियों में से एक ख़ूबसूरत जोड़े की याद अब भी दिल में बाक़ी है। दोनों जवान थे, ख़ूबसूरत, पढ़े-लिखे, नई-नई शादी हुई थी, इसलिये गुलमर्ग में हनीमून मनाने आये थे और इसीलिये गुलमर्ग देखने के बजाय एक दूसरे को देखने में ज्यादा व्यस्त रहते थे। लड़का लड़की की आँखों में डालकर कहता—"जानमन, यह ऊषा कितनी सुन्दर है।" और लड़की अपना नर्म हाथ उसके कन्धे से छूकर कहती—"और यह फूलों से महकी हुई फ़िज़ा, हाय, मैं तो मर जाऊँगी।"......बस ये दोनों दिन भर मरते रहते थे......ऊषा पर मर रहे हैं, फूलों पर मर रहे हैं गाफ़कोर्स पर मर रहे हैं, चाँदनी रात पर मर रहे हैं, देवदार के पेड़ों से लेकर पहाड़ी टट्टुओं तक पर मर रहे हैं। बाद में यह भी मालूम हुआ कि ये दोनों दिन भर तो मरते रहते हैं और रात भर जागते रहते हैं। संयोग से उनका कमरा मेरे कमरे की छत पर था, तीसरी मंज़िल पर। बस रात को कभी गिलास टूटने की आवाज़ आती थी, कभी चारपाई औंधी हो जाती, कभी बिल्लियाँ गुर्राती थीं। ओत्रायन का ख़याल था कि दोनों एक स्वप्न देख रहे हैं और नहीं जानते कि इस अलिफ़ लैलवी स्वप्न की हद पर वास्तविकता का प्रेत भी रहता है।

मैंने कहा—"बूढ़े तेरी अक़्ल मारी गई है। क्या शादी करना बुरा है? शादी होती है, बच्चे पैदा होते हैं, इस स्वप्न से इन्सानों की सुहानी बस्ती में एक नया घर बढ़ता है।"

ओब्रायन कहता—"शादी बुरी नहीं, ख्वाब का टूटना बुरा होता है। और ये स्वप्न बहुत जल्द टूट-फूट जाते हैं। क़ुदरत अपने जाल बिछाती है। इसीलिये तो उसने फूलों में ख़ुशबू, हिरन में कस्तूरी और औरतों में सुन्दरता रक्खी। और जब क़ुदरत का काम पूरा हो जाता है तो फूल मुर्झा जाते हैं, हिरन शिकार हो जाते हैं, औरतें बूढ़ी हो जाती हैं और तुम्हारे स्वप्न टूट जाते हैं।"

"जिस तरह रात को मेरे हाथ से शीशे का गिलास टूट गया था।" लड़की ने मुस्करा कर कहा और कनखियों से अपने पति को देखने लगी। दोनों ने किसी ऐसी दिलचस्प घटना को अपनी निगाहों में दोहराया, जिसकी हैसियत उस समय दोहरी मिठास की सी हो गई।

वे दोनों हँसने लगे। लड़की बोली—"रात का वक़्त था, गिलास टूट गया और पानी फ़र्श पर बह निकला। फ़र्श लकड़ी का था और नीचे आपका कमरा था।"

मैंने कहा—"तब तो यह समझिये कि ख़ैरियत ही हो गई। मेरा बिस्तर ज़रा एक तरफ़ था......हाँ, कमरे की दरी अभी तक गीली है।"

"आह डार्लिंग, देखो वह चिड़िया कितनी ख़ुश रंग है।" लड़की ने मुझे टूटे हुए गिलास की तरह बेकार समझ कर अपने शौहर से कहा, और वे दोनों एक दूसरे का हाथ दबाते हुए बालकोनी से बाहर देखने लगे।

ओब्रायन बोला—"सुन्दरता अनन्त, अमर नहीं है। बस मुझे सृष्टि और उसके निर्माता पर रहरह कर यही ग़ुस्सा आता है। आख़िर ऐसा क्यों है।"

मैंने कहा—"कौन कहता है हुस्न अमर नहीं है। तुम हुस्न को व्यक्तिगत रूप से देखते हो। सख्त रिऐक्शनरी हो तुम। हुस्न को सामूहिक रूप में देखो। फूल हमेशा मुस्कराते हैं, नाफ़े में कस्तूरी सदा महकती है, औरतों की ख़ुबसूरती.....।" मैंने नौजवान लड़की की तरफ़ देखकर फ़िक़रा अधूरा रहने दिया। ओब्रायन की आँखें गहरी सब्ज़ हो गईं।

"और फिर ग़ौर करो कि हुस्न वक़्त का एक हिस्सा है। उसका सौन्दर्य-युक्त प्रभाव है। जब तक वक़्त नहीं मरता, हुस्न कैसे मर सकता है। औरत अपनी लड़की में, फूल अपनी कली में, हिरन अपने नाफ़े में उस हुस्न को चमकता देखता है।"

"और अब्दुल्ला अपने बेटे में।" ओब्रायन ने व्यंग किया।

हम बहुत देर चुप रहे। लड़का और लड़की चले गये। फिर भी ख़ामोशी रही। बैरे ने चाय रखदी, हम दोनों ख़ामोशी से उसे पीने लगे। पहाड़ों पर धुंध गहरी हो गई थी। गाफ़-कोर्स पर बदलियों के नाज़ुक-नाज़ुक हाथ बढ़ते हुए नज़र आये, बालकोनी तक आ पहुँचे, हमारे गालों को छूने लगे, यह नाज़ुक-नाज़ुक हाथ......

बस गुलमर्ग में मुझे यही चीज़ पसन्द है, यह मनोहर स्पर्श, यह धुंध की सफ़ेद उंगलियाँ, अपने गाँव का नज़ारा है, ओब्रायन अपनी पुरानी यादों में खो गया।

फिर एकाएक कहने लगा—"शराब कभी बूढ़ी नहीं होती, बस यही एक चीज़ दुनिया में अमर है,......मैंने एक औरत से प्रेम किया, उसने मुझे ठुकरा दिया, मैंने अपने प्रेम के नशे को मुद्दतों तक ताज़ा रक्खा, फिर यह प्रेम भी बूढ़ा हो गया, मैंने उसे जवान रखना चाहा, लेकिन प्रतिक्षण उसके चेहरे पर झुर्रियाँ पड़ती गईं। एक दिन वह मर गया।"

और वह औरत ?"

"पता नहीं, कहीं होगी। मैं अब इसे देखना नहीं चाहता, मैं अपने देश वापस नहीं जाना चाहता। बीस साल पहले मैंने उसे देखा था। वह प्यानो पर बैठी हुई एक दिलफ़रेब गत बजा रही थी।" ओब्रायन धीरे-धीरे सीटी में वह गत बजाने लगा। उसकी आँखें नम हो गईं। बाहर धुंध में वह लड़का और लड़की ग़ायब हो रहे थे।

फ़िरदौस का इश्क़ बड़ा अजीब है। फ़िरदौस में हर मंगलवार को टंगमर्ग से नर्सें आती थीं और आया लोग और मास्ता खिलाने वाली लड़कियों को हर बुधवार को छुट्टी मिलती थी। इसलिये फ़िरदौस में बुध और मंगलवार को खाने और पीने के लिये ख़ास इन्तज़ाम होता। पहले तो खाना ज़्यादा तैयार किया जाता, शराब अधिक मात्रा में मुहैया की जाती और फिर उसी दिन गोरे और अमेरिकन फ़ौजी भी न जाने कहाँ से टपक पड़ते, बिलकुल बच्चों के से चेहरे। आख़िरी क्रूरता के बावजूद भी मुझे वे बेहद मासूम दिखाई देते। पतलूनों की तराश, टोपियों के कोण और छाती के फैलाव के बावजूद ये लोग मुझे बुरे न लगते, उनके चेहरे जैसे कुछ माँग रहे थे, जैसे किसी चीज़ की खोज में थे, कुछ हासिल करना चाहते थे।

ये इश्क़ हासिल करना चाहते थे, इसलिये इनकी ज़रूरत ज़माँ ख़ान, जो फ़िरदौस में इश्क़ का व्यापारी था, पूरी कर देता। अन्दाज़ यह होता—

"वेल बैरा !"

"यस सर !"

"क्या बाट है ?"

"सब ठीक है। टंगमर्ग से नया मिस साहब आया है, लेकिन साहब, उसको चार बजे सुबह टंगमर्ग में मेजर साहब के बँगले पर हाज़िर होना मांगता......।"

"ओह सब ठीक है। अम .खुद—सुना तुमने, हम .खुद पहुँचायेगा।"

एक अंदाज़ यह होता।

"हलो डार्लिंग!" वह कहता।

"हल्लो स्वाइन!" (सुअर के बच्चे)

"कम आन।"

"यू स्टूपिड।" (तुम मूर्ख हो!)

"डोंट बी सिल्ली। (जाहिल न बनो) कम आन।" (अब आभी जाओ)

"You are very cheeky"

"Shut up"

इस खूबसूरत और हसीन परिचय के बाद दोनों देवदार के जंगलों में बनफ़शे मे फूल जमा करने के लिये तशरीफ़ ले जाते।

ओब्रायन उन फ़ाक़ामस्तों को माफ़ कर देता था। ये बेचारे चन्द दिनों के लिये छुट्टी पर आये थे, इसके बाद फिर जंग पर चले जायँगे। ये फ़ौजी इन चन्द दिनों में अपनी जवानी से सारा रस निचोड़ लेना चाहते थे, अपनी खाली गोद को हुस्न के सारे गुदाज़ से भर लेना चाहते थे, अपने अरमानों की दुनिया को चुम्बनों के मधुर स्वाद से बसा देना चाहते थे, फिर इसके बाद वही रेतीले मैदान होंगे, वही खन्दकें, जंगलों में दुश्मनों की घात।

"मैं सिपाहियों को हमेशा माफ़ कर देता हूँ। वह एक औरत की इज्ज़त पर हाथ डालता है तो हज़ारों औरतों की इज्ज़त बचा लेता है।" ओब्रायन का यह वाक्य मुझे अब तक याद है। शायद उस वक़्त बर्मा से भागे हुए एक ठीकेदार ने कहा था—"साहब किसकी इज्ज़त और कहाँ की इस्मत। यह फ़लस्फ़ा खाना खाने के बाद सूझता है। अजी साहब, जब हम बर्मा से भागे तो मेरे साथ पूरा ख़ानदान था। बीबी था, जवान लड़कियाँ थीं, छोटे-छोटे बच्चे थे, सब रास्ते में मर गये। मैंने अपनी आँखों से अपने बच्चों को, अपनी बीबी को रोटी के एक-एक टुकड़े के लिए तरसते देखा। मेरी लड़कियाँ पेट की आग बुझाने के लिये अपनी इज्ज़त उस ख़ूनी सड़क पर बेचती नज़र आती थीं, इज्ज़त? उल्लू का पट्ठा है, हरामज़ादा है वह जो इज्ज़त और सतीत्व की पवित्रता पर यक़ीन रखता है। यह सब फ़लसफ़ा पेट भरने के बाद सूझता है......।"

वह दूर तक इसी तरह बकता झकता रहा। ओब्रायन के चेहरे से ग़ुबार छटने लगा। कहने लगा—"शराब मँगाओ, शराब, बस शराब कभी बूढ़ी नहीं होती, शराब कभी नामेहरबान नहीं होती, शराब कभी धोखा नहीं देती। वह इन्सान की तरह ज़ालिम नहीं है, ख़ुदा की क़सम, यसू की क़सम, वह हरगिज़ ज़ालिम नहीं है।"

गहरे नीले आसमान में तारे चमकने लगे, नैडोज़होटल की पहाड़ी पर एकाएक बिजली के लट्टूओं की क़तार जल उठी। ऐसा लगा जैसे किसी ने बनफ़्शे के फूलों की छड़ी हवा में उछाल दी हो। और फिर चाँद पच्छिमी क्षितिज पर, ऊषा की आख़िरी लकीर पर लज्जित, संकुचित, शर्माया हुआ उदय हुआ, उस हसीन साक़ी की तरह जिसने अपने गोरे हाथों में पहली बार मीना उठाई हो।

ओब्रायन पीने लगा। अब उसकी आँखें नीली थीं, आस्मान की तरह साफ़ !

कमरा नम्बर सात में एक इटालियन बूढ़ा और उसकी लड़की मेरिया रहते थे। मेरिया दिन भर अपने कमरे में प्यानो बजाती रहती, और शाम को अपने बाप के साथ सैर करने जाया करती। मेरिया के नख-शिख में एक एशियाईपन था। शायद इसीलिये मैं उसे इतना पसन्द करता था। बूढ़ा इटालियन यहाँ पचीस-तीस साल से रहता था। बाज़ार में उसकी एक दूकान थी जहाँ वह खाने पीने का सामान रखता था। किताबों की एक छोटी लायब्रेरी भी थी जिसमें अधिकतर जासूसी उपन्यास, गन्दे क़िस्से, भूतों की कहानियाँ और इसी क़िस्म का साहित्य था जो सिपाहियों को और पढ़े-लिखे अमीरों को बेहद पसन्द है, वे उसकी लायब्रेरी में से किताबें किराये पर पढ़ने के लिये ले जाते। बूढ़े इटालियन को छड़ी बनाने का बहुत शौक़ था और वह जंगल की लकड़ियों से ऐसी सुन्दर छड़ियाँ बनाता था जो गुलमर्ग की सौग़ात में गिनी जाती थीं, और घुमक्कड़ लोग उन्हें ख़रीद कर बड़े शौक़ से अपने घर ले जाते थे। इसके अलावा उसे 'Concertina" बजाने का बहुत शौक़ था। रात को वह खाना खाकर Concertina के साथ गाया करता और मेरिया प्यानो बजाती। मेरिया प्यानो बहुत अच्छा बजाती थी और लड़ाई से पहले गुलमर्ग में अक्सर प्रतिष्ठित अंगरेज़ी घरानों में प्यानो सिखाने जाया करती। लड़ाई शुरू होते ही यह दोनों बाप-बेटी हिरासत में ले लिये गये। बाद में जब उन्होंने अपने हिन्दुस्तान-निवासी होने का सबूत दिया तब छोड़ दिये गये, फिर भी उन पर कड़ी निगरानी थी। जंग से पहले बूढ़े की दूकान का नाम 'इटालियन स्टोर' था।

जंग शुरू होते ही उसने यह नाम बदल कर 'ऐन्टी-इटालियन स्टोर' रख दिया। हिरासत के बाद उस स्टोर का नाम "एलाइड स्टोर" हो गया। दरअसल इस बूढ़े को राजनीति से ज़रा भी दिलचस्पी न थी। मेरा विचार है कि अगर कल गुलमर्ग पर जंगल के रीछों का राज हो जाय तो यही इटालियन बूढ़ा अपनी दूकान का नाम बदल कर "रीछ स्टोर" रख देगा, और साथ ही मोटे अक्षरों में "यहाँ पर रीछों को शहद मुफ्त मिलता है......।" लेकिन फ़िलहाल तो इस सरकार की स्थापना की कोई आशंका न थी। जंग शुरू हो जाने के बाद मेरिया का अंगरेज़ी घरानों में आना-जाना बन्द हो गया था और प्यानो सिखाने से जो आमदनी होती थी वह भी खत्म हो चुकी थी। उधर इटालियन यानी ऐन्टी-इटालियन यानी एलाइड स्टोर की आमदनी भी कम हो गई थी। इसलिये हालत ज़रा पतली थी। फ़िरदौस के छोटे बैरे जमाँ ख़ान ने यह सब हाल देखकर मेरिया पर अपना जाल फेंका था। लेकिन मेरिया क़ाबू में न आई। कुछ ग़रीब लोग बेहद ढीठ होते हैं, बड़ी मुश्किल से क़ाबू में आते हैं। मेरिया इन्हीं "बड़ी मुश्किलों" में गिनी जाती थी। जमाँ ख़ान उसके कारण बेहद परेशान था। होटल के बड़े भिश्ती अब्दुल्ला को इसी कारण मेरिया ;और उसके बाप से हमदर्दी था, क्योंकि वह स्वयं एक लुटा हुआ किसान था। सीने में एक ज़ख्मी दिल रखता था। इसीलिये उसकी लड़ाई जमाँ-ख़ान और छोटे भिश्ती से हुई, जो कमरा नम्बर ७ का काम जी से न करते थे, और जमाँ ख़ान तो कमरा नं ७ का काम करने की जगह लड़की को उलटा परेशान करता था। अब्दुल्ला इस लड़ाई में बुरी तरह पीटा गया, हाथ पाँव पर चोटें भी आई और मैनेजर ने अलग डाँटा क्योंकि कमरा नं० ७ की देखभाल जमाँ-ख़ान और यूसुफ़ के सपुर्द थी, अब्दुल्ला को बीच में दख़ल देने

का क्या हक़ था। अबकी उसने अपनी हमदर्दी यों ज़ाहिर की तो नौकरी से अलग कर दिया जायगा।

मेरिया मुझे पसन्द थी। उसका हुस्न प्रभात की भाँति शीतल, कँवल की तरह खिला हुआ चेहरा, आँखों की ख़तरनाक मासूमियत, जिस्म के नाज़ुक झुकाव, होंठों की वह उजली-उजली मुस्कान, लेकिन मेरिया की गम्भीरता मुझे बहुत नापसन्द थी। मैं चाहता था कि यह लड़की गम्भीर न रहे, इन मासूम आँखों में शोख़ी झलकने लगे, इस कँवल की पत्तियों पर हँसी की तेज़ी नाचने लगे, उस उजली मुस्कान में शरारत की बिजली तड़प जाय, जिसकी रग-रग में एक ऐसी थरथरी आये कि उसकी हस्ती का कोना-कोना जाग उठे और उसके जीवन का बहाव किसी तूफ़ानी नदी की भाँति उमड़ता हुआ नज़र आये..........मेरिया......मेरिया .....एक दिन प्यानो पर Nutcrackers की धुन बजा रही थी। मुझसे न रहा गया। मैंने कहा—"या तो तुम निरी मूर्ख हो, बेवक़ूफ़ हो, जाहिल हो या....."

"या ?......हाँ कहो।"

"या तुम औरत के भेस में रास्पोटिन हो, Nutcrackers की धुन सुनकर मुझ ऐसे कूढ़ मग़ज़ एशियाई का जी भी नाचने को चाहता है और एक तुम हो कि बुझे हुए बल्ब की तरह बिलकुल ठस बैठी हो। क्या बात है आख़िर ? उठो, भागो, दौड़ो, नाचो, नाचो, नाचो यहाँ तक कि तुम्हारी दुनिया का कण-कण गतिशील हो जाय और तुम्हारे शरीर का एक-एक अंग थक कर चूर हो जाय।" यह कह कर मैंने उसे बाँहों से पकड़ कर प्यानो पर से उठा लिया और दो-तीन चक्कर कमरे में तेज़ी से नाचते हुए लगाये, फिर एकाएक ठहर गया। अब वह मेरी बाँहों के घेरे में थी। मैंने उसके

होंठ चूमते हुए कहा—"इस जंग के बारे में तुम्हारा क्या ख़याल है !"

उसने अपने आपको मेरी बाँहों की गिरफ़्त से आज़ाद कर लिया और मेरे मुँह पर एक हलका सा तमाचा मारकर बोली—"तुम बड़े वहशी हो जी।"

मैंने कहा—"मैं यही ग़ुस्सा देखना चाहता था। मुझे तुम्हारी इस गम्भीर मुस्कराहट से सख़्त चिढ़ है। तुम्हारे अन्दाज़ इटालियन लड़कियों ऐसे नहीं हैं। वह मजनूनाना जोश ख़रोश, वह बेमौक़ा हँसी, उछल कूद, वह ......वह सब कुछ तुममें नहीं है, सचमुच तुम औरत नहीं हो, मरमर का बुत हो, और या तो तुम अपनी ज़िन्दगी पर जान-बूझ कर इस भारी गम्भीरता का दबीज़ परदा डाले हुए हो ताकि लोग तुमसे प्रभावित हो जायँ। यू रास्पोटिन गर्ल......इधर आओ, मेरे पास बैठो।"

वह कहने लगी—"जब तुम मेरी उम्र को पहुँचोगे तब तुम्हें मालूम होगा।"

मैंने कहा—"मैं तुमसे उम्र में दस साल बड़ा हूँ।"

मेरिया बोली—"मेरा मतलब ज़ेहनी उम्र से था। असल उम्र वही है। यों तो शायद तुम मुझसे उम्र में दस साल बड़े होगे, लेकिन तुम्हारा ज़ेहन, तुम्हारी समझ, तुम्हारी बुद्धि बिलकुल मुर्ग़ी के एक छोटे चूज़े की तरह है।"

"अच्छा तो गोया मैं एक चूज़ा हूँ।" मैंने ग़ुस्से से उसकी कमर में हाथ डालते हुए कहा।

"एक छोटा-चूज़ा।" यह कह कर वह मुस्कराई। वही गम्भीर, उदास मुस्कराहट।

मैंने पूछा—"इस जंग के बारे में तुम्हारा क्या ख़याल है।"

वह कहने लगी—"जंग... ...जंग... ...तुम्हारा चुम्बन बहुत अच्छा था... ...जंग बहुत बुरी चीज़ है। मैं एक औरत हूँ, मैं आदमी के चुम्बन को समझ सकती हूँ, उसके हिन्सात्मक भाव को नहीं समझ सकती, यह मारकाट क्यों होती है, मेरा भाई इस समय फ़ौजी क़ैदी है।" उसकी आँखें नमनाक हो गईं।

मैंने कहा—"माफ़ करना, यह जंग तुम्हारे फ़ैशिस्टों ने शुरू की है।"

वह बोली—"मैं फ़ैशिस्ट नहीं हूं, न ही मेरा भाई फ़ैशिस्ट था। मेरा बाप छड़ियाँ बनाता है और रात को Concertina पर गाना पसन्द करता है। मुझे प्यानो से इश्क़ है। मैंने कभी सियासत के बारे में नहीं सोचा, हमेशा आज़ाद और अलग सी रही, इसीलिये मुझे फ़ैशिज़्म पसन्द नहीं। जब मैं पैदा हुई तो वर्साइ के सुलहनामे पर दस्तख़त हो चुके थे और मैं हिन्दुस्तान में थी। मुझे मुसेलिनी से कोई हमदर्दी नहीं उसने तो मेरा प्यानो सिखाना भी बन्द कर दिया।"

उसकी आँखें नम हो गईं। मैंने कहा—"तुम किसी पुलिस आफ़िसर के सामने बयान नहीं दे रही हो।"

वह बोली—"मुझसे तो सभी पुलिस अफ़सरों का सा बरताव करते हैं। मेरे लिये यह नई बात नहीं है। लेकिन दरअसल यह हमारी ग़लती थी। हम ख़ुशी के राग अलापते रहे Concertina बजाते रहे और राजनीति से अलग रहे और हमने फ़शिस्टों को मनमानी कारवाई करने का मौक़ा दिया।" ......उसकी साँस रुकने लगी।

मैंने उसकी ठूड़ी छूकर कहा—"अच्छा, चलो जाने दो... ...-यह आख़िरी जंग नहीं है अगर हम लोग पचीस-तीस बरस और ज़िन्दा रहे तो एक और जंग देखेंगे, इससे कहीं भयानक

और ख़ौफ़नाक जंग। यह जंग फ़ैशिस्टों को तो शायद तबाह कर दे लेकिन पूरब और पच्छिम के नाज़ुक मामलों को न सुलझा सकेगी, न यह दुनिया में उस समाजवादी निज़ाम की बुनियाद रख सकेगी जिसके बिना भूक, बेकारी और जहालत का इस दुनिया से दूर होना नमुमकिन है। इसलिये आओ, बेथूविन का Moonlight Sonate शुरू करो जिसमें कि इसज़िन्दगी के रंज व ग़म और अपने प्यारे आदर्श की दूरी का भाव ख़त्म हो जाय... ।"

चाँदनी रात थी। मैं और ओब्रायन खाने के बाद बालकोनी में बैठे हुए अपनी कल्पना में परिस्तानी क़िले तामीर कर रहे थे। मैं सोच रहा था कि अल्पथर की झील के बीच में बर्फ़ के ग्लेशरों के बीच एक सुन्दर महल हो और उसमें मेरिया हो और एक बहुत बड़ा प्यानो चाँदी का, और मेरिया का लिबास सेब के फूलों का हो......और मेरिया हो और मैं—और—बस और कोई नहीं ...उल्लू कहीं का। लोग भूखे मर रहे हैं, आटा रुपये का दो सेर बिक रहा है और जनाब सोच रहे हैं कि एक चाँदी का प्यानो, झील के बीच में एक महल हो, यह हो, वह हो... बस हमेशा यही मुसीबत होती है। ऐसे सुन्दर सपने इसी तरह जल्द टूट-फूट जाते हैं। लेकिन आदमी ऐसे ख़्वाब क्यों देखता है, आदमी से मतलब क्या चीज़ है। अब्दुल्ला भी तो आदमी है, अब्दुल्ला ने भी कभी ऐसे सपने देखे थे, अब भी अपने बेटे के लिये रात-दिन ऐसे ही सपने देखता है, इन्सानों को यह सपने की दुनिया क्यों प्यारी है और क्यों वह इन सपनों को सच नहीं बना लेता? सूरज, चाँद, पानी, हवा की तरह अगर धरती और उसकी सारी पैदावार भी सब इन्सानों की मिली जुली सम्पत्ति हो जाय तो हर घर इन सुन्दर सपनों का जगमगाता हुआ शीश-

महल बन जाय ,फिर इन्सान ऐसा क्यों नहीं करता। वह क्यों दूसरों का हक़ मारता है, वह समाजवादी क्यों नहीं, क्या उसमें इतनी सी भी अक़्ल नहीं कि इस सीधी-सादी बात को समझ ले……

ओब्रायन सिगार की राख झाड़ कर बोला—"हनरी फ़ोर्ड का लड़का मर गया है।"

मैंने पूछा—"फिर ? इससे मोटरों के कार बार पर क्या असर पड़ेगा, शतूहत के दरख़्तों पर फल लगने बन्द हो जायेंगे क्या ?"

ओब्रायन बोला—"नहीं…. मैं दरअसल ग़ौर कर रहा था कि वह हनरी फ़ोर्ड का एकलौता बेटा था। हनरी फ़ोर्ड अमरीका में सरमायादारी का प्रतीक है…… अब मैं सोचता हूँ, पूँजी, पति हनरी फ़ोर्ड ख़ुश है ? ख़ुश था, ख़ुश रहेगा ? आख़िर यह दौलत के ढेर क्यों ? इनका उपयोग ही क्या है, जबकि हनरी फ़ोर्ड दो बिस्कुट और आध पाव दूध भी दिन में हज़म नहीं कर सकता।"

मैंने कहा—"हनरी फ़ोर्ड बहुत बड़ा आदमी है। वह इस क़दर मेहनत करता है कि कुछ खा नहीं सकता।"

ओब्रायन बोला—"माउन्ट एवरेस्ट भी बहुत बड़ा पहाड़ है। हनरी फ़ोर्ड में और माउन्ट एवरेस्ट। लेकिन हनरी फ़ोर्ड की महानता अस्वाभाविक है, बनावटी है, उसकी हैसियत शोषक की सी है। माउन्ट एवरेस्ट की दिलकशी एक मासूम बच्चे की सी है जो सफ़ेद बर्फ़ से खेल रहा हो, वह अमर है।"

मैंने पूछा—"गांधी के बारे में तुम्हारा क्या ख़याल है ?"

ओब्रायन बोला—"एक मुद्दत तक मुझे काले आदमियों से नफ़रत रही, अब भी कभी यह नफ़रत जाग उठती है। मुझे उनका रंग पसन्द नहीं, उनकी आत्महीनता का भाव पसन्द नहीं, उनका ख़ुशामद भरा लहजा पसन्द नहीं। मेरा ख़याल रहा है कि उनमें बिल्ली की सी चालाकी और लोमड़ी की सी धोखेबाज़ी पाई जाती है। और हब्शियों को तो मैं मुद्दतों इन्सान समझने से इन्कार करता रहा.....गांधी काला आदमी है, वह कभी सफ़ेद आदमी का दोस्त नहीं हो सकता। कुछ लोग उसे यसू मसीह की तरह मासूम समझते हैं, मैं इस धोखे में नहीं फँसा हूँ। मेरा अब भी यही ख़याल है कि वह सफ़ेद नस्ल के इन्सानों का जानी दुश्मन है।"

मैंने कहा—"वह तो सिर्फ़ यह चाहता है कि हिन्दुस्तान में हिन्दुस्तानियों का राज हो।"

ओब्रायन बालकोनी पर झुक गया और बोला—"मुमकिन है मेरे जज़्बात पक्षपातरहित न हों, आख़िर मैं भी सफ़ेद नस्ल से सम्बन्ध रखता हूँ, लेकिन इस वक़्त उसने हमें सख़्त मुश्किल में डाल दिया है। हिन्दुस्तान भर में एक आग सी फैली हुई है और यह अशान्ति हमें जापानियों का मुक़ाबला करने से रोक रही है।"

ठीक उसी समय ज़ोर से बिगुल बजने की आवाज़ आई और बहुत से घोड़ों की चाप। अंगरेज़ घुड़सवारों का एक क़ाफ़ला हमारी बालकोनी के नीचे से गुज़र रहा था। यह लोग पिस्तौलों और रायफ़लों से लैस थे। आगे-आगे दो अंग्रेज़ बिगुल बजा रहे थे।

यह क़ाफ़ला बालकोनी से गुज़रता हुआ गाफ़कोर्स की तरफ़ चला गया।

मैंने कहा—"अविश्वास से अविश्वास पैदा होता है। यह ज़िन्दगी का उसूल है,.अंग्रेज़ों को हिन्दुस्तानियों की जमहूरियत पसन्दी पर विश्वास नहीं और हिन्दुस्तानियों को अंगरेज़ों की हमदर्दी और वादों पर। अब देखिये, गुलमर्ग में कोई फ़साद नहीं, लेकिन यहाँ भी यह लोग हर रोज़ इनका गश्त कराते हैं और एक बंगले से दूसरे बंगले तक घूमते हुए सारे गुलमर्ग का चक्कर लगाते हैं कि कहीं कोई कांगरेसी बम न फेंक दे।

सरकुलर रोड की सिम्त से वह नौजवान जोड़ा चला आ रहा था। चाँदनी में शराबोर, हृदय उमंगों से भरा हुआ, निचली मंज़िल में मिस ज्वायस, जो लंकाशायर की रहनेवाली थी, निहायत उदास सुरों में अपने वतन का एक देहाती गीत गा रही थी। उसका नया यार शराबी लहजे में बार-बार कह रहा था—"डार्लिङ्ग, मैं भी लंकाशायर का रहने वाला हूँ। डार्लिंग मैं लंकाशायर का रहने वाला हूँ।"

चाँदनी में नहाये हुए रुपहले बुत को अपनी गोद में लेकर नौजवान सड़क पर खड़ा होकर वहीं अपनी पत्नी को चूमने लगा।

निचली मंज़िल पर एकाएक नर्स रोने लगी—"मैं घर जाना चाहती हूँ, डार्लिंग ब्वाय, मैं घर जाना चाहती हूँ।"

ओब्रायन कहने लगा—"इन्सान अभी भौगोलिक प्रेम से आज़ाद नहीं हुआ। गांधी हिन्दुस्तानी है, उसे हिन्दुस्तान से प्रेम है, यह नर्स लंकाशायर की रहने वाली है, इसे लंकाशायर से प्रेम है। हालाँकि असलियत यह है कि गुलमर्ग के मुक़ाबले में लंकाशायर बिलकुल······।" वह सर हिला कर चुप हो गया।

मैंने कहा—"परसों बक्कीमल की दूकान पर मेरी मुलाक़ात एक अंग्रेज़ दर्ज़िन से हुई, वह इंगलैंड की लेबर पार्टी की मेम्बर

थी वह भी तुम्हारी तरह गांधी को बुरा-भला कह रही थी, कहती थी, कि अब गुलमर्ग में भी दंगा होगा और यही लोग जो आज हमारे पास शहद, डबल रोटी और शलगम बेचने के लिये आते हैं, हम पर छुरों और लाठियों से हमला करेंगे।" फिर वह मुस्करा कर कहने लगी—"यह अच्छा है कि मैं उन लोगों के हाथों मारी जाऊँ जो मुझे जानते हैं। मुझे अजनबियों के हाथों से मरना पसन्द नहीं"

ओब्रायन बोला— 'तुमने उसका व्यंग देखा ?"

मैंने कहा—"यह व्यंग सरासर ग़लत था। गांधी किसी अंगरेज़ को क़त्ल करना नहीं चाहता, और फिर उस अंगरेज़ दर्ज़िन को जो लेबर पार्टी की मेम्बर भी थी, हिन्दुस्तानियों से इस क़दर डर क्यों महसूस हो रहा था, यह इतना अविश्वास किस लिये, तुम्हारे ख़याल में क्या इसमें रत्ती भर गुनाह का एहसास शामिल न था ?"

नीचे नर्स अब ज़ोर-ज़ोर से चिल्ला रही थी—"मैं लंकाशायर जाना चाहती हूँ, सिल्ली ब्वाय, मैं लंकाशायर जाना चाहती हूँ, सिल्ली ब्वाय ...।"

ओब्रायन मुस्करा कर कहने लगा—"और यही गांधी चाहता है।"

एकाएक अब्दुल्ला का लड़का ग़रीब भागता हुआ आया और छूटते ही बोला—"बाबू जी ! अब्बा को कुछ हो गया है। अभी भले चंगे थे, बैठे हुक़्क़ा पी रहे थे, फिर खाँसने लगे और एकदम चुप हो गये। मैंने कहा—अब्बा, अब्बा, वह नहीं बोले, वह बोलते ही नहीं बाबू जी......।"

मैं भागा-भागा नीचे गया, अब्दुल्ला अपनी कोठरी में मरा पड़ा था। आँखों की पुतलियाँ ऊपर चढ़ गई थीं, सपनों का

इन्तज़ार करते-करते। हाय, कितनी निराशा थी उन आँखों में, यह सपने कभी सच्चे नहीं होते।

मैनेजर दरवाज़े तक भागा हुआ आया। उसने अब्दुल्ला या मेरी तरफ़ देखा तक नहीं। ग़रीब को देख कर बोला—"मेजर साहब के लिये पानी...गर्म पानी चाहिये...जल्दी टब भर दो।"

और वह भागता हुआ वापस चला गया।

ग़रीब ने किताब ज़मीन पर रख दी और बालटी उठाने लगा।

"मेरे अब्बा को जगा दीजिये।" उसने निराश स्वर में बड़ी ही नम्रता से कहा—"मैं मेजर साहब के लिये पानी रख आऊँ।"

पास ही किसी कमरे से आवाज़ आ रही थी। लंकाशायर की रहने वाली नर्स को उसका नया यार चूम रहा था, और उसे ख़ास शराबी लहजे में दिलासा देते हुए कह रहा था—"मैं तुझे लंकाशायर ले जाऊँगा। मेक यू माई बेबी, मैं तुझे लंकाशायर ले जाऊँगा। मेक यू स्वीटी······।"

अब्दुल्ला आज ही क्यों मरा, ऐसी सुन्दर चाँदनी रात में। वह नौजवान जोड़ा अभी तक गुलमर्ग की चाँदनी में नहा रहे थे, हवा में जंगली फूलों की महक बसी हुई थी। क्या अब्दुल्ला आज से चन्द साल बाद न मर सकता था? शायद उसका बेटा पढ़-लिखकर उसकी कल्पना के सपने सच्चे कर देता, यानी यह कौन सा तरीक़ा है मरने का कि साहब लोगों के लिये पानी की बालटियाँ भरते-भरते मर गया। क्या वह अपने खेतों में, अपने छोटे से बग़ीचे में, अपने मिट्टी के घर में न मर

सकता था ? मैं पूछता हूँ, यह कैसा मज़ाक़ है ? उसे इस तरह मरने का क्या हक़ था, वह इस तरह क्यों फ़ाक़ा करते-करते, एड़ियाँ रगड़ते-रगड़ते झूठे सपने देखते-देखते मर गया। दुनिया में ये लाखों, करोड़ों अब्दुल्ला दिन-रात इस तरह क्यों मरते हैं ? क्यों जीते हैं ? क्यों रहते हैं ? यह क्या मज़ाक़ है, कैसा तमाशा है ? कैसी ख़ुदाई है ?

"अब्दुल्ला ! अबे सुअर के बच्चे, मेजर साहब पानी माँग रहे हैं।" मैनेजर कहीं दूर से चिल्लाया। बोल ! बोल ! ऐ सुअर के बच्चे, सफ़ेद-सफ़ेद पुतलियों वाले, गन्दे बूढ़े, गंजी चाँद वाले, खुरदरे हाथ-पाँव वाले, अधनंगे फ़ाक़ामस्त इन्सान, बोल ! क्या मर कर भी तुझे गाली का जवाब देना न आयेगा ?

फ़िरदौस में देखे हुए कुछ अजीब से चेहरे याद आ रहे हैं। एक सिक्ख और उसकी सुन्दर पत्नी, जो गुलमर्ग देखने आये थे, और इसलिये वह वापस चले गये कि गुलमर्ग में पहाड़ के सिवा और कुछ न था। सरदार की पत्नी ठुड्डी पर उंगली रखकर बड़े नख़रे से कहने लगी—"ऐ है, यहाँ है क्या ? बस पहाड़ ही पहाड़ है, मुझे तो कश्मीर ज़रा भी अच्छा न लगा। बस यहाँ है क्या, पहाड़ ही पहाड़ हैं।"

गलियों के कुत्ते !

एक बूढ़ा पेंशिनर वज़ीर, और उसके साथ एक ग़रीब अंग्रेज़ पादरी। पादरी फ़ौज में नौकर था। सरकारी फ़ौज में ईसाई धर्म का प्रचारक, फिर भी यह आत्महीनता का भाव उसे खाये जाता था कि हाय, वह पादरी है। काश, वह व्यापारी, सिपाही, ऐक्टर या मिनिस्टर क्यों न हुआ। पादरी, कितनी बेबसी थी उन आँखों में, वह परेशान खोई-खोई आँखें !

बूढ़ा मंत्री हर समय अपने बड़े लड़के का ज़िक्र करता, जो स्काटलैंड में था और हिन्दुस्तानी होते हुए भी एक स्काच के घर पल रहा था! बूढ़ा मंत्री बड़े गर्व से इस बात को बार-बार होटल के मुलाक़ातियों के सामने दुहराता।

"जमाल मेरा बेटा है। जमाल स्काटलैंड में है, जमाल मेरा बेटा है। जमाल स्काटलैंड में है।" इसके अलावा उसमें एक और बुरी आदत भी थी। वह मेरी बालकोनी में मुझसे इजाज़त लिये बिना आ बैठता और फिर मेरा बाथरूम भी इस्तेमाल में ले आता, जो बालकोनी से कुछ फ़ासले पर ही था। एक दिन मैंने चिढ़ कर कहा—"साहब, आप यह बालकोनी और यह बाथरूम मेरी इजाज़त के बग़ैर इस्तेमाल नहीं कर सकते।"

"क्यों?" उसने बेहद नाराज़ होकर पूछा।

"इसलिये कि जमाल आपका लड़का है और जमाल स्काटलैंड में है और जब तक वह हज़रत यहाँ तशरीफ़ लायें, मैं आपको आपके पादरी दोस्त सहित इस बालकोनी से नीचे फेंक देने का ख़ौफ़नाक इरादा रखता हूँ।"

"लेकिन आप मुझे नहीं जानते।" उसने और भी बिगड़ कर कहा—"यहाँ के सब लोग, सब बड़े-बड़े लोग मेरे दोस्त हैं। मैं मिनिस्टर रह चुका हूँ और वायसराय बहादुर का मेहमान भी। मैं आपको जेल भिजवा सकता हूँ, आप किससे बात कर रहे हैं, मेरा लड़का जमाल स्काटलैंड में है।"

मैंने धमकी के लिये उसे घूँसा दिखाते हुए कहा—"बेहतर होगा कि आप भी स्काटलैंड तशरीफ़ ले जायँ। कम से कम बालकोनी की तरफ़ तशरीफ़ न लायें। वरना•••••।"

पाँच-छ: तमाशा देखनेवाले मुलाक़ाती इकट्ठे हो गये। आपने उनकी तरफ़ मुड़ते हुए कहा—'वाह, यह भी कोई बात है, मेरी इस तरह कोई बेइज़्ज़ती करे ? मैं पेंशिनर मिनिस्टर हूँ, मेरा लड़का जमाल स्काटलैंड में है और…।"

पादरी उसे घसीट कर परे ले गया।

एक हिन्दुस्तानी लड़की आई थी। कमरा नं० ४२ में आकर रही। न वह ऐक्ट्रेस मालूम होती थी न हेड मिस्ट्रेस, न वेश्या, न विवाहित स्त्री, फिर भी अकेली आई थी और जितने दिन गुलमर्ग में रही, अकेली रही और अकेली वापस गई।

ओब्रायन कहने लगा—"इस लड़की को देखकर मेरे मन में अपनी प्रेमिका की याद ताज़ी हो जाती है।"

बालकोनी के दृश्य ने मुझे उससे भी परिचित होने का मौक़ा दिया। ओब्रायन ने उससे पूछा—"क्या आप पिछले जन्म में किसी आयरिश खानदान में पैदा हुई थीं ?

उसने निहायत सादगी से जवाब दिया—"मुझे याद नहीं।"

हाय क्या भोलापन था, कितनी प्यारी मासूमियत थी, ओब्रायन का बुरा हाल हो गया। कहने लगा—"हो न हो यह वही है, मुझे धोखा देने के लिये हिन्दुस्तानी लड़की के बहरूप में आई है। चन्द रोज़ और यहाँ रही तो मैं मर जाऊँगा। मेरी सारी फ़िलास्फ़ी ख़त्म हो जायगी.........मुझे याद नहीं। हाय हाय........।"

ख़ैरियत हुई कि चन्द रोज़ के बाद वह वापस चली गई।

बालकोनी में एक सुहानी दोपहर, मधुर, धूप, ठण्डी, प्लेटों में सेब और मिस्री आलूचे, मेरिया की सुलहरी बाँहें और फूल

की कलियों की तरह नाजुक उंगलियाँ......मेरिया कहने लगी—"वह पिकनिक तुम्हें याद है, हम दोनों ने फीरोजपुर के नाले में से मछलियाँ पकड़ने की नाकाम कोशिश की थी......?
और Fisheries के मुहकमे के एक कर्मचारी ने हमें बिना आज्ञा मछलियाँ पकड़ने पर गिरफ़्तार करना चाहा था।" मैंने जवाब दिया।

"हुम......हुम......।" उसने एक और आलूचा उठाते हुए कहा—"मेरा मतलब है कि वह पिकनिक बुरी तो न थी। अब फिर कभी चलो। अबकी हम Fisheries के मुहकमे से इजाज़त भी ले लेंगे।"

मैंने कहा—"मुझे तो उस पिकनिक में सिर्फ़ अख़रोटों का मज़ा पसन्द आया था और या बेदे मजनूँ का झुण्ड जहाँ नाले का पानी भी सोया हुआ मालूम होता था और बेदे मजनूँ की शाखें पानी पर झुकी थीं।"

"और चनार के पत्तों का रंग शराबी था।" मेरिया ने स्वप्निल स्वर में कहा।

"बिलकुल तुम्हारे होंठों की तरह।" मैंने शोख़ी से कहा।

"बच्चे हो। बस मिठाई देखकर ललचा जाते हो। तुम्हें तो प्रेम करना आता नहीं।" मेरिया ने एक गम्भीर मुस्कुराहट के साथ कहा—"शायद इसीलिये तुम मुझे इस क़दर पसन्द हो।"

बहुत देर तक ख़ामोशी रही। मैं अपनी खाल सहलाता रहा।

"फिर।" वह बोली—"जंग के बाद मैं अपने वतन वापस चली जाऊँगी। वहाँ समाजवादी पार्टी में शामिल होकर राज-

नीतिक काम करूँगी। प्यानो बजाने से काम न चलेगा। यह अभागी जंग खत्म हो जाय, फिर हम सब मिलकर पूरी कोशिश करेंगे कि जंग दोबारा न हो। क्यों ठीक है न!"

मैंने कहा—"मुझे भी साथ लेती चलोगी?"

"ज़रूर।" वह खुशी से बोली—"हमारा गाँव लेम्बार्डी में है। वहाँ अंगूर की बेलें हैं और शहतूत के पेड़, और खेतों के किनारे-किनारे लाइम के पेड़। तब तक मेरा भाई भी आज़ाद हो जायगा, फिर हम सब मिलकर खेत बोयेंगे और रेशम के कोये इकट्ठे करेंगे और पापा को एक ऊँची सी कुर्सी पर बैठा कर असली इटालियन शराब पिलायेंगे और कभी...कभी... जंग न होने देंगे......।"

दूसरे दिन मेरिया और उसके बाप को पुलीस ने फिर हिरासत में ले लिया। यह गिरफ़्तारी सुरक्षा के रूप में हुई थी। जंग आखिर जंग है और ऐसे समय समाजवादी इटालियनों और फ़ैशिस्ट इटालियनों में भेद करना मुश्किल ही नहीं नामुमकिन है, और अगरचे हाकिमों को उन दोनों व्यक्तियों पर सन्देह न था फिर भी सावधानी ज़रूरी थी।

चलते समय मेरिया के बाप ने मुझे एक छड़ी उपहार के रूप में भेंट की।

मेरिया ने एक उदास मुस्कराहट के साथ कहा—"और मैं तुम्हें क्या दूँ कच्चे चूज़े?"

मैंने प्यानों की तरफ़ इशारा करके कहा—"मैं तुमसे बहार का गीत सुनना चाहता हूँ, बेथूविन का बसन्त संगीत। मुझे विश्वास है कि बहार ज़रूर आयगी।"

यह प्याना पर वसन्त संगीत बजाने लगी। उसकी आँखों से आँसू गिर रहे थे और संगीत की गहराइयों में सुरीले पक्षी चहचहाने लगे, फूलों भरी डालियाँ लहराने लगीं, शहतूत के पत्ते खुशी से नाचने लगे, बुलबुल के गीत, स्त्रियों के प्रसन्नतापूर्ण ठहाके, और बेफ़िक्र बच्चों की मासूम शोखियाँ··· बहार !··· बहार !!··· बहार···!!!

मेरिया की आँखों से आँसू गिर रहे थे।

बहार ज़रूर आयगी, एक दिन इन्सान की उजड़ी कायनात में बहार ज़रूर आयगी। यह संगीत कह रहा है, मेरिया, तेरे आँसू बेकार न जायँगे !

—०—

सड़क के किनारे

मैं सड़क के किनारे-किनारे चल रहा हूँ और डल झील का नज़ारा कर रहा हूँ। मैं बहुत मुद्दत के बाद कश्मीर आया हूँ, लेकिन डल मुझे उसी तरह खूबसूरत और जवान नज़र आती है। इसी के गहरे नीले पानी में शंकराचार्य के मन्दिर का अक्स काँप रहा है और सुर्ख़ परदे वाले शिकारे पानी की सतह को चीरते हुए निशातबाग़ की तरफ़ बढ़ रहे हैं। जब ये शिकारे तैरते हुए नीलोफ़र के फूलों के क़रीब से गुज़रते हैं तो नीलो-फ़र के सोये हुए फूलों पर पानी की फुहारें पड़ जाती हैं और वे चौंक कर पानी की सतह पर दौड़ने लगते हैं। शिकारे आगे बढ़ जाते हैं और शिकारों में बैठे हुए मर्द औरत। हाँजियों का गीत जल के उजले-उजले पानी से उभरता आ रहा है—

बाग़े निशात के गुलो
शाद रहो जवाँ रहो,
तुम पे निसार जन्नतें
रूह फ़ज़ा मसर्रतें।
मस्त नशे में रात दिन
खुर्रमो शादमाँ रहो।
बाग़े निशात के गुलो।

हाँ, यह मेरा जाना-पहिचाना वही कश्मीर है जिसके बेटों ने हज़ारों मुसीबतों के होते हुए भी अपनी हुस्नकारी नहीं खोई, अपनी ख़ुशबू नहीं खोई। ज़िन्दा रहने की आरज़ू और हँसते हुए मेहनत करने की उमंग नहीं खोई। यह मेरा वही जाना पहिचाना कश्मीर है।

मैं सड़क के किनारे-किनारे चल रहा हूँ। यह सड़क जो हरि नगर से अनन्तनाग आती जाती है। इस रास्ते में शोला रूपी चनार हैं और बादामों के बाँके पेड़, नाशपातियों के झुंड और सेब के दरख़्त। बर्फ़ ज़मीन में घुल गई है और अभ-अभी नौबहार का सब्ज़ा बनकर फूटी है। सेब की शाखों पर कलियाँ चटक गई हैं उनकी गुलाबी मुस्कराहटें जगह-जगह रास्ता चलने वालों के क़दम रोक लेती हैं। मैं भी यहाँ ठिठक जाता हूँ क्योंकि यहाँ सेब के फूल हैं, एक चश्मा है, एक गाय है और एक हसीन चरवाही है, जो गाय को चश्मे से पानी पिला रही है। मैं लड़की से कहता हूँ कि तुम ज़रा गाय को परे हटा लो तो मैं पानी पी लूँ।

लड़की—तुम ज़रा परे हट कर बैठ जाओ और गाय को पानी पी लेने दो। वह तुम्हारे साये से डरती है।

मैं—मुझे सख्त प्यास लगी है।

लड़की—प्यास इन्सान और हैवान दोनों को बराबर लगती है।

मैं—पहले मैं पानी पी लूँ।

लड़की—"पहले गाय पानी पी ले। गाय को देखते नहीं हो, पानी पी रही है, इसे बीच में से क्यों हटा दूँ? तुम पानी पी रहे होते तो मैं तुम्हारे हाथ से पानी का प्याला छीन लेती?

मैं—(हँसकर) तुम बड़ी समझदार मालूम होती हो। मगर ताज्जुब है, इतनी सूझ-बूझ रखते हुए भी तुम चरवाहियों का काम करती हो।

लड़की—चरवाहियों के काम के लिये तो बड़ी सूझ-बूझ चाहिये। गाय-भैंसों के रेवड़ सँभालने के अलावा उसे तुम्हारे ऐसे राह चलते हुए समझदारों से भी तो निपटना होता है।

(दोनों हँसते हैं)

मैं—तुम्हारा नाम बेगमाँ है न?

लड़की—(हँसकर) नहीं, मेरा नाम जैनब है, मैं यहाँ गाँव के स्कूल में पढ़ती हूँ।

मैं—स्कूल में पढ़ाती हो कि गाय-भैंस चराती हो?

लड़की— यह गाय तो एक अंधे लड़के की है जिसके माँ-बाप पंजाब के दंगे में मारे गये थे! वे अपना देश छोड़कर मेहनत-मजदूरी के लिये पंजाब गये थे, फिर उन्हें आना नसीब न हुआ।

मैं—यह अंधा लड़का कैसे बच गया? क्या यह यहीं था?

लड़की—यह भी अपने माँ-बाप के साथ था, कुछ फ़सादी इसे भी मारने पर तुले हुए थे, लेकिन फिर उन्होंने तरस खा कर सिर्फ़ उसकी आँखें निकाल दीं और उसे ज़िन्दा छोड़ दिया। उसने उस दिन से कोई फ़साद नहीं देखा, दंगों को सिर्फ़ सुना है। ऐसी-ऐसी भयानक आवाज़ें सुनता है कि हर रात सोते-सोते जाग कर चीख़ने लगता है—'मुझे बचाव, मुझे बचाव।'

मैं—ख़ैर, वह ज़माना अब गुज़र गया।

लड़की—(आह भरकर) हाँ, लेकिन उस बच्चे को रोशनी नहीं मिलेगी, न मेरा शौहर ही मुझे मिलेगा।

मैं— तुम्हारा शौहर?

लड़की—हाँ, वह हमारे गाँव के स्कूल में बच्चों को पढ़ाता था। अब उसकी जगह मैं पढ़ाती हूं। हम दोनों एक दूसरे को चाहते थे। लेकिन यह दंगे से बहुत पहले की बात है। वह मुझे छिप-छिप कर पढ़ाया करता था और, मेरे माँ बाप मेरी शादी नम्बरदार के लड़के से करना चाहते थे और मैं छिप छिप कर पढ़ती थी और नम्बरदार के बेटे पर सौ लानत भेजती थी। फिर मेरी शादी की बात पक्की हो गई, फिर दंगों की ख़बरें आने लगीं और फिर जब मेरी शादी में चन्द दिन रह गये तो वह अंधा लड़का घूमता-घामता भीख माँगता वापस गाँव में आ निकला। उसको इस हालत में देख कर गाँव वालों के गुस्से की हद न रही।

(मजमे का शोर)

(ढोल पीटे जा रहे हैं। लोग हँस रहे हैं, चीख़ रहे हैं, इस बेहंगम शोर में नीचे की आवाज़ें उभरती हैं)

१—मारो मारो, इन सब को मारो। एक भी न बचने पाये।

२—एक आँख के बदले दोनों आँखें निकाल दो।

३—बनिये का घर जला दो।

४—लाले और उसकी बेटी को ज़मीन में गाड़ दो।

५—चलो, मारो, मारो, मारो !

६—हम खून का बदला चुकायेंगे, अपने दुश्मनों का खून बहायेंगे।

लड़की— आन की आन में सारा गाँव इकट्ठा होगया। दूसरे फ़िरक़े के लोगों ने घबरा कर घर छोड़ दिये और भाग कर स्कूल की चारदीवारी में पनाह ली। गाँव वालों ने स्कूल के गिर्द घेरा डाल दिया। अन्दर स्कूल में उस्ताद पढ़ा रहा था।

स्कूल मास्टर—पढ़ो बच्चो ! सब इन्सान भाई-भाई हैं।

बाहर से आवाज़ें—मारो, मारो, सबको मारो।

अन्दर की आवाज़ें—हमें बचाओ, किसी तरह से हमें बचाओ हमने कोई कसूर नहीं किया है। हम तो सैकड़ों बरस से यहाँ रहते चले आये हैं। मास्टर जी, आपने कभी देखा, हमने गाँव वालों के ख़िलाफ़ कभी कोई बात की हो।

"यह लीजिये ज़ेवर, मेरी बेटी की लाज बचा लीजिये"

बाहर से आवाज़ें—ज़िन्दा गाड़ देंगे। पत्थरों से मार डालेंगे। तेल में तल देंगे।

अन्दर की आवाज़ें—हमने कुछ नहीं किया है। यहाँ से चार सौ मील पर जिन लोगों ने तुम्हारे गाँव वालों की जानें ली हैं तुम उनका बदला उनसे लो, हमसे क्यों लेते हो।

एक लड़की—भाई ! मैं तो गाँव की कुँआरी हूँ, मैं तुम्हारी इज़्ज़त हूँ, मुझे बचा लो भाई !

एक लड़का—उस्ताद जी ! हम क्या पढ़ें, सब इन्सान भाई-भाई हैं ?

मास्टर—चुप रहो, मैं बाहर जाता हूँ ।

(क़दमों की आवाज़, बाहर का शोर एक दम बढ़ जाता है । मारो मारो, टुकड़े टुकड़े करदो, क़ीमा बना दो, निकालो सब को बाहर । एक का भी ज़िन्दा नहीं छोड़ेंगे ।)

मास्टर— गाँव वालो ! मेरी सुनो ।

(सब चुप हो जाते हैं । फिर एक दम चिल्लाने लगत हैं)

"नहीं नहीं, हम नहीं सुनेंगे । हमें ख़ून चाहिये ख़ून ।"

मस्टर—तुम्हें ख़ून चाहिये ? मेरा ख़ून लेलो, लेकिन यह कहाँ का इन्साफ़ है कि तुम बाहर के फ़सादियों के ख़ून का बदला अपने गाँव वालों से लो ।

एक आवाज़—यह अन्धा लड़का देखते हो, इन लोगों ने इसके माँ बाप को मार दिया, इसकी आँखें निकाल दीं । हम भी अब यही सलूक करेंगे ।

दूसरी आवाज़—आगे से हट जाओ मास्टर जी ।

तीसरी अवाज़—मैं तुमसे कहता हूँ, दरवाज़े से परे हट जओ ।

मास्टर—मैं भी पीछे नहीं हटूँगा । मुझे पहले दर्जे की किताब की हिफ़ाज़त करनी है जिस में लिखा है—'सब इन्सान भाई भाई हैं ।' और मुझे मेरी अम्माँ, मेरी प्यारी, मेरी जान अम्माँ

की इज्जत बचानी है। मैंने दस बरस इस किताब को पढ़ाया है, आज यह किताब तुम मुझसे छीन रहे हो ? मैं यह किताब नहीं दूँगा। अपने जीते जी मैं इसके एक-एक हर्फ़ की हिफ़ाज़त करूँगा। गाँव वालो, इस किताब को न फाड़ो, यह तुम्हारे बच्चों की किताब है, इसमें सेब के फूल हैं और नाशपाती के पेड़ हैं और भाई-बहन मदरसे जा रहे हैं। और सूरज निकल रहा है और किसान खेतों में हल चला रहे हैं। इसके बच्चे बाप का अदब करते हैं और सलीम मोहन का दोस्त है और रज़िया निर्मला की सहेली है। गाँव वालो, यह तुम्हारे बच्चों की किताब है। इसे क़त्ल न करो, नई ज़िन्दगी को उभरने दो।

एक आवाज़—क्या बकता है यह, पहले इसी पर हाथ साफ़ करो। दुश्मनों से मिल गया है यह।

दूसरी तीसरी आवाज़ें—हाँ, हाँ, मार डालो इसे, आगे बढ़ो, देर हो रही है।

मास्टर—तुम्हें बदला चाहिये न, दो आँखों के बदले मेरी दो आँखें लेलो।

चौथी पाँचवीं आवाज़ें—देखते क्या हो जी, आगे बढ़ जाओ, मास्टर आप ही पीछे हट जायगा।

बहुत सी आवाज़ें--चलो आगे बढ़ो...मारो...मारो...मारो...

(शोर कम हो जाता है। लड़की की आवाज़ उभर आती है)

ज़ैनब—गाँव वालों ने उसे मार डाला, स्कूल की चौखट पर स्कूल मास्टर का ख़ून बहा। उसके सुर्ख़-सुर्ख़ ताज़ा ख़ून को देख कर गाँव वाले एक दम चौंक गये। उनका सारा ग़ुस्सा उसके पाक ख़ून में डूब गया और वह पर परेशान हो कर पीछे हट गये और

अपने किये पर पशेमान होकर अपने-अपने घरों को चले गये और फिर उस दिन के बाद उन्होंने दूसरे फ़िरक़े वालों को कुछ नहीं कहा। हमारे गाँव में सब अमन चैन से रहते हैं और किसी से कोई कुछ पूछताछ नहीं करता और अब कहीं कोई झगड़ा नहीं है।

मैं— अब शायद तुम्हारा ब्याह भी नम्बरदार के बेटे से होगया होगा।

जैनब—कैसी बातें करते हो ? मेरा शौहर ज़िन्दा है। लोगों के लिये वह मर चुका है और उन्होंने स्कूल मास्टर की लाश को क़ब्र में गाड़ दिया है। मगर मेरे लिये वह ज़िन्दा है और उसके जीते जी मैं नम्बरदार के बेटे से कैसे शादी कर सकती हूँ ? अब मैं हर रोज़ स्कूल में पढ़ाती हूं और हर रोज़ उर्दू की पहली किताब में मुझे उसका मुस्कराता हुआ चेहरा साफ़ नज़र आता है और फिर मैं मुस्करा कर स्कूल के बच्चों की तरफ़ देखती हूँ तो वे मुझे अपने ही बच्चे मालूम होते हैं। मैं, मेरा शौहर, मेरे बच्चे, अन्धे लड़के की गाय, मेरा देश कितना खूबसूरत है अजनबी ! ..... तुम किस देश के रहने वाले हो अजनबी ?

मैं—मेरा कोई देश नहीं है। मैं इन्सानों की सड़क पर रहता हूँ, चलता हूँ और कभी-कभी रुक कर किसी चश्मे की सतह से होंठ मिलाकर प्यास बुझा लेता हूँ। अब तुम अपनी गाय को परे हटा लो, यह पानी पी चुकी है और मेरे कोट की आस्तीन चबा रही है'।

(जैनब हँसती है और उसकी गुम होती हुई आवाज़ में संगीत उभरता है। कुछ क्षणों के बाद बैकग्राउंड म्योज़िक (आनन्दपूर्ण) के स्वर ऊँचे होते जाते हैं, फिर थरथरा कर कम हो जाते हैं।)

मैं फिर सड़क के किनारे-किनारे चल रहा हूँ। यह सड़क जो मटन से पहलगाम को जाती है। मटन हिन्दुओं का तीर्थ है, यहाँ दूर-दूर से यात्री आते हैं और मटन के मन्दिरों और चश्मों का दर्शन करके अमरनाथ की तरफ़ चले जाते हैं। मटन ब्राह्मणों की बस्ती है और यहाँ हज़ारों वर्ष से ब्राह्मण रहते बसते हैं और बिना किसी डर या ख़तरे के पूजा-पाठ में व्यस्त दिखाई पड़ते हैं।

मटन में कोई मसजिद नहीं है। हालाँकि आस-पास के गाँवों में मुसलमानों की बहुत अधिक आबादी है। मेरा मतलब है कि मटन में पहले कोई मसजिद नहीं थी। अब की कई वर्षों के बाद जो मैं आया हूँ तो क्या देखता हूँ कि यहाँ पर एक छोटी सी मसजिद है। मैं उस मसजिद को देखकर बहुत ख़ुश हुआ और दौड़ा-दौड़ा मुल्ला जी के पास गया। मुल्ला जी का हाथ कटा हुआ था और उनकी आखें बड़ी-बड़ी और चमकीली थीं।

मैं—मुल्ला जी, यह मसजिद कब बनी?

मुल्ला—दंगे के दिनों में।

मैं—दंगे के दिनों में? ताज्जुब है, दंगे फ़साद के दिनों में तो मसजिदें और मन्दिर बनते नहीं, टूटते हैं। आप कैसी अजीब बात कह रहे हैं।

मुल्ला—हमारा मुल्क कश्मीर बड़ा अजीब मुल्क है न? इसलिये यहाँ पर बड़ी-बड़ी अजीब बातें होती हैं।

मैं—पूरी बात बताइये।

मुल्ला—जब तुम्हारे यहाँ दंगा हो रहा था और ख़ून की नदियाँ बह रही थीं और हिन्दू मुसलमान एक दूसरे के ख़ून के प्यासे मालूम होते थे, उन चन्द फ़सादियों ने यहाँ, हमारे यहाँ, मटन में भी आकर दंगा करना चाहा था। उन्होंने आस पास

के देहातों में किसानों को भड़का दिया कि वे मटन के मट्ठ पर हमला करें और ब्राह्मणों को मार कर और मट्ठ को जला कर उन मसजिदों का बदला लें जिनको नुक़सान पहुँचाया गया है।

मैं—तो फिर क्या हुआ ? मन्दिर तो जले नहीं, वैसे ही मौजूद हैं ।

मुल्ला—तुम सुनो तो, जब फ़सादी यह खिचड़ी पका चुके तो उनमें से कुछ लोग मेरे पास फ़तवा हासिल करने के लिये आये। मैंने फ़तवा नहीं दिया। मैंने कहा—यह हमारे मज़हब के ख़िलाफ़ है। इस पर वह लोग ना उम्मीद होकर चले गये।

मैं—फिर ?

मुल्ला—लेकिन फ़सादियों ने हिम्मत नहीं हारी। उन्होंने किसानों को बहकाना शुरू किया और आख़िर में चन्द लोगों को मट्ठ पर हमला करने के लिये तैयार भी कर लिया। जब मुझे इत्तला मिली, मैं यहाँ नहीं था, एक गाँव में गया हुआ था। वहाँ मैंने बहुत से किसानों को मट्ठ पर हमला करने के लिये तैयार भी कर लिया और हम लोग रातों रात मट्ठ के सामने पहुँच गये। बेचारे पुजारी बहुत डरे हुए थे। दूर से ढोल-ताशों की आवाज़ आ रही थी। फ़सादी क़रीब आरहे थे।

(मजमे की आवज़ें, ढोल पीटने की आवाज़ें)

१—यहाँ मट्ठ नहीं रह सकता ।

२—शहीद मसजिदों का बदला लिया जायगा।

३—जला दो इन्हें ।

४—पुजारियों को चश्मे में फेंक दो।

५—आगे बढ़ो, जवानो ! लोहे के जंगले को पार कर जओ, इन चश्मों की सारी मछलियाँ तुम्हारी हैं ।

मुल्ला—ठहरो, तुम लोग इस जंगले से आगे नहीं जा सकते।

एक आवाज़—क्यों नहीं जा सकते ? हम सब कुछ फूँक के रख देंगे।

मुल्ला—यह इस्लाम के खिलाफ़ है।

दूसरी आवाज़—मुल्ला दुश्मनों से मिल गया है।

तीसरी आवाज़—उनकी तरफ़दारी कर रहा है।

चौथी आवाज़— मुल्ला जी सामने से हट जाओ।

मुल्ला—मेरे जीते जी, तुम इस मठ पर हमला नहीं कर सकते, तुम लोग जिनके बहकाने में आकर हमला कर रहे हो, वह हमारे देश को बरबाद कर देंगे। मैं तुमसे फिर कहता हूँ, मेरे जीते जी यह दंगा नहीं हो सकता। ”

एक आवाज़—मुल्ला जी ठीक कहते हैं।

दूसरी आवाज़—क्या ख़ाक ठीक कहते हैं।

तीसरी आवाज़—ये लोग हमारे भाई हैं। हज़ारों बरस से यहाँ रहते चले आये हैं।

चौथी आवाज़—इन्हीं के भाइयों ने वहाँ आग लगाई है हम यहाँ आग लगायेंगे।

पहली आवाज़—नहीं, तुममें हिम्मत है तो वहाँ जाकर लड़ो। यहाँ हमें क्यों बरबाद करते हो ।

दूसरी आवाज़—आगे से हट जाओ

(शोर बढ़ जाता है, फिर धीरे-धीरे कम हो जाता है। आखिर में मुल्ला जी की आवाज़ उभर आती है।)

मुल्ला जी — उसी दंगे में मेरा यह हाथ कट गया, मगर मठ बच गया। किसानों को बहुत जल्द समझ आगई कि दंगाई अपना उल्लू सीधा कर रहे थे। पुजारियों ने भी मेरा बहुत शुक्रिया अदा किया। इससे पहले यहाँ मठ के आस-पास कोई मसजिद न बन सकती थी। अब उन पुजारियों ने और यहाँ के यात्रियों ने ख़ुद मसजिद के लिये चन्दा जमा किया और इसकी तामीर के सिलसिले में सब पेश पेश रहे। यह मसजिद जो अब तुम देख रहे हो उसी चन्दे से बनी है।

मैं – मुल्ला जी आप बहुत ऊँचे आदमी हैं।

मुल्ला—मैं एक छोटा सा इन्सान हूँ बेटा, हाँ, मेरी मसजिद बहुत ऊँची है। आस्मान तक जाती है।

(मधुर संगीत कुछ क्षणों के लिये बजता है)

मैं सड़क के किनारे-किनारे चल रहा हूँ। यह वह मेरा जाना-पहिचाना कश्मीर नहीं है, यह नया कश्मीर है। ज़ैनब का, मास्टर जी का और मुल्ला जी का कश्मीर। कश्मीर के बेटे डल में खिले हुए नीलोफ़र के फूल हैं जो तूफ़ान की धमक महसूस करते हुए चौंक उठते हैं और तूफ़ान की लहरों पर डोल रहे हैं और संभल-संभल कर चारों तरफ़ का निरीक्षण कर रहे हैं और सुर्ख़ पर्दों वाले शिकारे तेज़ी से पानी की सतह चीरते हुए निशातबाग़ की तरफ़ बढ़ रहे हैं और हाँजी चप्पू चलाते हुए गारहे हैं—

हुस्नो जमाल काश्मीर
दिलकशो शोख़ व दिलपिज़ीर
अपना वतन है बे-नज़ीर।
प्यारे वतन के दोस्तो
सरकशो कामराँ रहो।
बाग़े निशात के गुलो
शाद रहो जहाँ रहो।